वैदिक संस्कार सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

वैदिक संस्कार सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखक

श्री आनन्द रत्नाकर जोशी
घनान्त (शिक्षक शुक्लयजुर्वेद काण्व)

डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा
पी०एचडी०(शैक्षिक सहायक)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग : रोहित राव

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN : मूल्य :

संस्करण : 2024

प्रकाशित प्रति PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

वैदिक संस्कार सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

प्राक्कथन

संस्कार दो प्रकार के होते हैं- देव संस्कार और ब्रह्म संस्कार, "**द्विविधो हि संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्चेति**"।। (हारीतस्मृति) "**गर्भाधानादि स्मार्तोः ब्राह्म स्नानान्त इति**"। (हारीत) गर्भाधानादि षोडश संस्कारों को ब्रह्म संस्कार कहा जाता है। "**पाकयज्ञा हविर्यज्ञाः सौम्याश्च देवा इति**"। हारीत् पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ सोमयज्ञादि प्रत्येक सप्त- सप्त याग देव संस्कार हैं। इन दोनों प्रकार के संस्कारों से संस्कृत द्विजाति त्रिविध तापों से (आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक) विमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

यह वैदिक संस्कार ग्रन्थ अध्ययन कर्ताओं के लिए सुलभ सोपान है, इस पुस्तक में मुख्यतः तीन संस्कारों का प्रयोग दिया हैं और तत्सम्बन्धित विषयों का परिचय भी प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम इकाई में अन्नप्राशन संस्कार परिचय एवं काल निर्णय। द्वितीय इकाई में अन्नप्राशन संस्कार सामग्री । तृतीय इकाई में अन्नप्राशन संस्कार प्रयोग विधि एवं उद्देश्य और प्रारम्भिक परिचय। चतुर्थी इकाई में अग्निस्थापन कर्माङ्ग हवन, पाँचवीं इकाई में वर्धापन विधि। षष्ठ इकाई में कर्णवेध संस्कार। सप्तम इकाई के अन्तर्गत अक्षरारंभ संस्कार एवं सरस्वती पूजन। आठवीं इकाई में वैदिक सूक्त, नवम इकाई में अन्नप्राशनादि संस्कारों का मूल प्रयोग पाठ एवं सूत्रपाठ तथा पूजन विधि प्रयोग आदि समाहित है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान द्वारा राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् के मान्यता प्राप्त अनुभवी संगठनों के द्वारा वेद सम्बन्धी छात्रों को रोजगारोन्मुखी कौशल विकास प्रशिक्षण देने हेतु यह योजना प्रारम्भ की है। इस योजना का सभी वेदप्रेमियों को लाभ हो एवं वेदों का उत्तरोत्तर प्रचार हो ऐसी वेदभगवान के चरणों में प्रार्थना।

आनन्द रत्नाकर जोशी

विषयानुक्रमणिका

इकाई	पृष्ठसंख्या
1. संस्कार परिचय एवं काल निर्णय	**1-9**
1.1संस्कार परिचय	1
1.2अन्नप्राशन के उद्देश्य एवं महत्त्व	1
1.3काल निर्णय	2
1.4तिथि निर्णय	3
1.5नक्षत्रादि शुभाशुभ मुहुर्त निर्णय	4-9
2. अन्नप्राशन संस्कार सामग्री	**10-11**
2.1 अन्नप्राशन संस्कार सामग्री	10
2.2. पूजन पूर्व सिद्धता	10-11
3. अन्नप्राशन संस्कार प्रयोग विधि	**12-36**
3.1 गणपत्यादिपूजन	16-23
3.2 पुण्याहवाचनादि	23-34
3.3 नान्दीश्राद्धान्तपूजन	34-36
3.4 ब्राह्मण भोजन (अन्नदान,धान्यदान)	36
4. अग्निस्थापन कर्माङ्ग हवन	**37-44**
4.1पञ्चभूसंस्कार	37
4.2 अग्निस्थापन	37-38
4.3 कुशकंडिका (स्थालीपाक)एवं पात्रासादन	38-43
4.4 अन्नप्राशनाङ्ग हवन	43-44
4.5 जीविकापरीक्षा अभिषेक	44
4.6 आशीर्वाद, ब्राह्मण भोजन	44

5. वर्धापन विधि **45-48**

5.1(जन्मदिवस) वर्धापनविधि परिचय 45-46

5.2गणपत्यादि सप्त चिरंजीव पूजन 46-48

5.3 आयुष्य होम 16

5.4 दीर्घायुष्यार्थ दान 48

5.5 वेदोक्त आशीर्वाद 48

6. कर्णवेध संस्कार **49-55**

6.1 कर्णवेध संस्कार परिचय 49-53

6.2 कर्णवेध विधि 54

6.3 पुण्याहवाचनादि नान्दीश्राद्धान्तपूजन 16

6.4 कन्यायाः नासावेध एवं ब्राह्मण भोजन 55

7. अक्षरारंभ संस्कार **54-60**

7.1संस्कार परिचय 56

7.2 पुण्याहवाचनादि पञ्चाङ्ग पूजन विधि 16

7.3 पूजन सामग्री 59

7.4अक्षरारंभ विधि 59

7.5 सरस्वती पूजन 60

7.6 लेखणी,पुस्तिका पूजन 60

8. वैदिक सूक्त **61**

8.1 शान्तिसूक्त 61

8.2 अग्निसूक्त 62-63

8.3 आयुष्यसूक्त 64

8.4 अभिषेक 65

8.5 आशीर्वाद मन्त्र कण्ठस्थीकरण 66

9. सूत्रपाठ एवं कारिकापाठ 67-103

9.1संस्कारों के गृह्यसूत्रों के अन्तर्गत मूलसूत्र एवं कारिका पाठ कण्ठस्थीकरण

महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

इकाईः1, संस्कार परिचय एवं काल निर्णय

1.1. **अन्नप्राशन संस्कार-** बच्चे को सर्वप्रथम सात्त्विक उच्च गुणवक्ता से युक्त अन्नाहार करानेवाले संस्कार को अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं।

दधिमधुघृतमिश्रमन्नं प्राशयेत्। अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारन्तारिष ऊर्जे न्नो धेहि द्विपदे चतुष्पद इति।(आ.गृ. 1.16.5) अकाम संयोग से दध्यादि से मिश्रित अन्न को अन्नपते**ऽन्नस्य नो मन्त्र से** बच्चे को खिलाना चाहिए

॥विधि प्रयोग॥

बालक के जन्मकाल से छठे मास में सामान्य देव पूजन पूर्वक उत्तम भाव और शुद्धता से माता द्वारा निर्मित चावल या खीर इत्यादि सुपाच्य पदार्थ शिशु को जेष्ठ व्यक्ति के द्वारा अन्नप्राशन किया जाए। तत्पश्चात शिशु को जीवन पर्यन्त सुपाच्य अन्न, धर्मयुक्त अर्थ से उपार्जित अन्न तथा शुद्धता एवं सात्विक भाव से पकाया अन्न प्राप्त हो ऐसी कामना भी करनी चाहिए "**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।। (छान्दोग्योपनिषद्7.26.2)। षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम्**(पा.गृ. 1.11.1) **षष्ठे मासस्यन्नप्राशनम्**(आ.गृ. 1.16.1) आयुर्वेद के अनुसार भी लघु और पौष्टिक अन्न शिशु सर्वप्रथम करना चाहिए। यथा- (**षण्मासञ्चैनमन्नं प्राशयेल्लघु-हितञ्च (सुश्रुतः, शरीरस्थानम्** 10.64)

अथ पुण्येऽहनि **षष्ठे तु मासे षष्ठे मासेऽन्नप्राशनं भवेत्। कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं दधिमध्वाज्यसंयुक्तम् अन्नं तं प्राशयेदन्नपत इत्यादिमन्त्रतः। कर्मयोगेण, वाऽजादिपक्षोक्तः प्राशयेद् द्विजः कामयोगतः। अमन्त्रकमिदं कुर्यात्प्राशनं योषितामपि।। (आ.गृ.सू. पृ सं** 190)

1.2. **अन्नप्राशन के उद्देश्य एवं महत्त्व-**

सर्वेषां प्राणिनां प्राणो भोज्यैरेव हि वस्तुभिः।

प्राणित्वं च तथा तेषां भोज्येन जगतः स्थितिः ।।2।।

सभी प्राणियों के प्राण भोज्य वस्तुओं में ही रहता है। उनका प्राणित्व भी भोजन सामग्री में ही है और भोजन से ही संसार की स्थिति है।

नीरोगित्वं च भोज्येन बलं तेजो जवस्तथा।

दीर्घायुष्यं च सर्वेषां श्रीमतां च तथा नृणाम् ।।3।।

भोज्य पदार्थों से नीरोगिता, बल, तेज और वेग, दीर्घायुष्य सभी श्रीमान् तथा अन्य मनुष्यों का होता है

बलं तेजश्च बोधमतः पूर्वे द्वयोऽवनिः।

पुरुषार्थस्तवैभिः स्याद् भोज्यः सर्वार्थसाधनः ।।6।।

बल, तेज और ज्ञान पूर्व से ही भोजन में स्थित हैं। पुरुषार्थ भी भोजन में निहित है। अर्थात् भोज्य पदार्थ में सभी मनोरथों के साधन हैं। इस प्रकार अन्न की महता ज्ञात करते हुए अन्नप्राशन अवश्य विधिविधान से करना चाहिए।

- **आज्यमन्नाद्यकामः**(आ.गृ. 1.16.2)
- **तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः।**(आ.गृ. 1.16.3)
- **घृतौदनं तेजस्कामः**(आ.गृ. 1.16.4)
    - उचित समय पर अन्नप्राशन होने से माता व शिशु दोनो के स्वास्थ की रक्षा
    - व्यक्तित्व का विकास
    - अन्न की प्राप्ति,पकाना, परोसना, खिलाना, और पचाना जैसे वैज्ञानिक तत्त्व।
    - शिशु के भविष्य के लिए आशीर्वाद और शुभकामनाएँ।
    - शिशु के शरीर को बलयुक्त बनाने के लिए अन्न का सेवन।

1.3. अन्नप्राशनसंस्कार काल-

मासि षष्ठेऽथ सौरेण चाष्टमे दशमेऽपि वा।

द्वादशे वाऽपरं विद्याद्युग्मेषु शिशुजन्मतः ।।8।।

शिशु के जन्म काल से सौर मास के अनुसार षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश या अन्यतम युग्म मास में शिशु का अन्नप्राशन करना चाहिए।

पञ्चाशद्दिवसांस्तिस्त्र प्राप्तश्चाहत्रितषष्ठिकान् ।

अर्वागे चोत्तमा भुक्तिः मासान्येऽप्येव पूविरो ।।9।।

एक सौ पचास दिनों से एक सौ अस्सी दिन पर्यन्त अन्नप्राशन संस्कार सर्वदा उत्तम कहा गया है। अन्य मासों में पूर्ववत् समझना चाहिए।

मासि प्रोक्तेषु कार्येषु मूढित्वं शुक्रजीवयोः।

न दोषकृत्तदा मासलक्षणोऽथ बलान्वितः ।।11।।

जिन मासों में जिन कार्यों को करने के लिए कहा गया है, उन मासों में शुक्र और गुरु की मूढ़ता का दोष नहीं होता है।

॥ अन्नप्राशन संस्कार काल (पुंसां) ॥

शिशु के जन्म के 6 महीने की आयु में अन्नप्राशन संस्कार आयोजित किया जाता है। जैसा कि नारदजी ने कहा है-

तन्मतो मासि षष्ठे स्यात् सौरेणोत्तममन्नदम्।

तदभावेऽष्टमे मासे नवमें दशमेऽपि वा॥

देवर्षि नारद के मतानुसार छठे मास में शिशु (कुमार) का अन्न प्राशन उत्तमकाल माना गया है। यदि कालातीत होता है तो अष्टम मास में अथवा नवम,या दशम मास में कर सकते है।।

द्वादशे वाऽपि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम्।

संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः॥

बारहवें मास में अथवा संवत्सर सम्पूर्ण होने के बाद प्रथम अन्नप्राशन कर सकते है ऐसे कुछ विद्वानों के के वचन है।

॥ अथ स्त्रीणामन्नप्राशन कालः ॥ तत्र वसिष्ठः

इदं च कुमार्याः अप्यमन्त्रकं कार्यम् ।

युग्मेषु मासेषु च सत्सु पुंसां संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम् ।

अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसम्प्राशनमिष्टमेतत् ॥

सम मास में अर्थात २,४,६,८ शिशु (पुत्र)का अन्न प्राशन अथवा संवत्सर के उपरान्त एवं विषम मासों में १,३,५,७,९ में कन्या (पुत्री) का अन्न अन्न अन्नप्राशन करना चाहिए जैसा कि श्रीपति जी के वचन हैं-

षष्ठे मासे प्राशनं दारकाणामन्यस्मिन् तत्कन्यकानां विधेयम्।

दारकः अर्थात् पुत्र (दारयति नाशयति जनकस्य पितृ ऋणमिति) (दृ- णिच्- ण्वुल्) छठे महिने में पुत्र शिशु का तथा अन्यस्मिन् मास में कन्या शिशु का अन्नप्राशन करना चाहिए।

अन्यस्मिन्नयुग्मे विषमें । (नारद)

षष्ठे मास्यष्टमें वाऽथ पुंसां स्त्रीणांन्तु पञ्चमें ।

सप्तमें मासि वा कार्ये नवान्नप्राशनं शुभम्॥

देवर्षि नारद जी के मतानुसार छठे अथवा आठवें मास में पुरुषों एवं कन्याओं का पाँचवे मास में करें। यदि किसी कारण उस समय में नहीं हो पाया हो तो सातवें मास में भी अन्नप्राशन शुभ होता है।

पक्ष निर्णय-

पक्षयोरुभयोरुक्तं कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना॥ (नारद)

अन्नप्राशन संस्कार प्रयोग विधि के लिए उत्तम मुहूर्त मास के शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष के तीन अन्तिम तीन तिथी (त्रयोदशी,चतुर्दशी,अमावास्या) इन तिथीयों को छोड दोनो पक्ष में कर सकते हैं। जैसा कि दैवगुरु बृहस्पति के वचन है-

पक्षयोरुभयोश्चैव कर्तव्या भोजनक्रिया।

भोक्तुर्नवत्वे भोज्ये च नवे कृष्णे विभागतः ।।17।।

1.4. तिथि निर्णय-

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा।

त्रयोदशी च दशमी प्राशने तिथयः शुभाः॥ (लघुनारद)

द्वितीया, तृतीया,पंचमी,सप्तमी, त्रयोदशी एवं दशमी तिथियाँ अन्नप्राशन के लिए शुभ हैं।

1.5. नक्षत्रादि शुभाशुभ मुहुर्त निर्णय

वार निर्णय -

बुधशुक्रगुरूणान्तु वारा बालाशने शुभाः।

चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना॥ (नारद)

महर्षि नारद के अनुसार बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, एवं सोमवार को अन्नप्राशन के लिए सर्वोत्तम माना गया हैं। कृष्ण पक्ष की तीन अन्तिम तीन तिथि (त्रयोदशी,चतुर्दशी,अमावास्या) इन तिथियों में स्थित वारों को छोड़कर उपर्युक्त वार में अन्नप्राशन करवाना शुभ हैं।

नक्षत्र निर्णय-

पौष्णादितीन्दुहस्ताश्वित्वाष्टवायव्यवैष्णवाः।।

रोहिणीमैत्रतिष्याश्च वारुणं चोत्तरात्रयम्।।

श्रविष्ठा च तथा होते षोडशात्राशने शुभाः।

भोज्यत्ववत्वे संशेक्तास्तथैतद् भोज्यनूतने ।।(14-15)

रेवती, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाति, श्रवण, रोहिणी, अनुराधा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, तीनों उत्तरा तथा धनिष्ठा ये 16 नक्षत्रों में अन्नप्राशन शुभ हैं। भोजन में और नवान्न भोजन हेतु शुभ हैं।

तारा निर्णय-

मैत्रे च परमे मैत्रे वै क्षेमे सम्पदि साधके।

गर्भाधानक्षत्रे वापि शोभने नवभोजनम् ।।23।।

अन्नप्राशन हेतु मैत्र तारा परम मित्र के सदृश होता है। क्षेमेतारा सम्पत्ति और साधक में गर्भाधान नक्षत्र साधक होता है। इनमें भी नवीन भोजन शुभ होता है।

वर्जनीयाः सदा शेषा विपत्प्रत्यरिनैधनाः।

जन्मर्क्षः परिहर्तव्यो विशेषाद्भोजने बुधैः ।।24।।

शेष विपत्ति प्रत्यरि, निधन अदि सदा वर्जनीय हैं। विद्वानों के द्वारा विशेष रूप से जन्म नक्षत्र का अन्नप्राशन में त्याग करना चाहिए।

ग्रहबल विचार-

केन्द्रत्रिकोणयोराये लग्ने शोभनदो गुरुः।

अशोभनस्तु षष्ठाष्टभ्रातृष्वन्त्यगस्तथा ।।25।।

केन्द्र, त्रिकोण, आय तथा लग्न में गुरु शुभ होता है। लेकिन षष्ठ, अष्टम, तृतीय और द्वादश भाव में अशुभ होता है ।

द्वितीये बलवज्जीवः स्वतुङ्गे वा स्ववर्गगः।

भुक्तौ शुभप्रदो ज्ञेयः प्रोक्तादन्यत्र नो शुभः ।।26।।

द्वितीय, अपने उच्च एवं अपने वर्ग में प्राप्त गुरु बलवान् होता है। गुरु के इन स्थानों में रहने पर नव भोजन शुभप्रद समझना चाहिए। कहे गये इन स्थानों से अन्यत्र स्थानों में गुरु शुभ नहीं होता है।

भ्रातृगश्चार्थवज्जीवः करोति नवभोजने।

लग्नस्थो विबलो वज्रिन् नैवातीव शुभप्रदः ।।27।।

नूतन भोजन के समय गुरु भ्रातृ स्थान में प्राप्त होने पर अर्थवान् बनाता है। हे इन्द्र ! बलहीन लग्नस्थ गुरु अतीव शुभप्रद नहीं होता है अर्थात सामान्य फल देता है।

वर्गलग्नार्थसहजात्मार्थभं ध्वायाष्टनवस्थिताः।

शुक्रः शुभकरो भुक्तौ स्मरार्यस्तेन शोभनः ।।28।।

नूतन भोजन में लग्न, अर्थ, सहज, पंचम, आय, अष्टम एवं नवम भाव में स्थित शुक्र शुभ करने वाला होता है। अतः इसमें बालक का अन्नप्राशन करना शुभ होता है।

भुक्तौ कर्मगतः शुक्रः शिशुप्राणविनाशनः।

भोक्तुं नवत्वेन शुभो जीवो भोज्येऽतिशोभनः।।29।।

कर्म स्थान में प्राप्त शुक्र शिशु का प्राण विनाश करने वाला होता है। नूतन पदार्थ के भोजन में गुरु अतिशोभन होता है।

नवान्त्यकर्मगश्चान्द्रि मृत्युदः शेषगः शुभः।

अरिष्टस्थानगश्चान्द्रिरुदितश्चेन्न शोभनः।।30।।

नव, द्वादश और कर्म स्थान में बुध मृत्यु को देने वाला होता है, शेष स्थानों में होने पर शुभ होता है। अरिष्ट स्थान में चन्द्रपुत्र बुध यदि लग्न में हो तो शुभ नहीं होता है।

वित्तदः सुतकर्मायगतः सुशुभदः शशी।

व्ययारिमृत्युधर्मस्थः पीडां दद्याच्छिशोः स्वयम् ।।31।।

पञ्चम, दशम और एकादश स्थान में प्राप्त चन्द्रमा धन तथा शुभ को देने वाला होता है। द्वादश, षष्ठ, अष्टम और नवम में स्थित चन्द्रमा स्वयं शिशु को पीड़ा देता है।

लग्नकर्मगतश्चन्द्रो भोजने मरणप्रदः।

भोज्य-भोक्तनवत्वे च स्वषड्वर्गोव्ययोर्विना ।।32।।

अन्नप्राशन में लग्न तथा कर्म स्थान में स्थित चन्द्रमा मृत्यु प्रदान करता है और यदि अपने षड्वर्ग अतिरिक्त व्यय स्थान में गया हो तो भोजन में सर्वदा नवीन अन्न प्राप्त होता है।

अरिष्टभागगो गोपीन्दुरिष्टानचशुभं ददौ।

बली स्वश्च भभागे वा बलवन्मित्रवीक्षितम् ।।33।।

अरिष्ट भाव में स्थित चन्द्रमा अरिष्ट न करके शुभता प्रदान ही करता है। बलवान् हो अथवा अपने नक्षत्र या राशि के भाग में हो या बली मित्र ग्रह से दृष्ट हो।

त्रिषडायगताः सूर्यराहुभौमयमाः सदा।

भोक्तुः शुभकराः सर्वे पापा शेषाः स्वशोभनाः ।।34।।

तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव में प्राप्त सूर्य, राहु, भौम तथा शनि सदा शुभ कारक होते हैं। भोजन में शेष स्थानों में स्थित पापग्रह शुभ करने वाले होते हैं। शेष पाप ग्रह भी शुभ ही करते हैं।

द्वितीये द्वादशे पापाः स्वोच्चवर्गबलान्विताः।

शुभदास्त्वन्यथा नेष्टाः लग्नेऽप्येवं जगाद कः ।।35।।

द्वितीय और द्वादश में अपने उच्च वर्ग में बल से युक्त पापग्रह शुभता प्रदान करते हैं, इससे विपरीत होने पर अशुभ फल प्रदान करते हैं भले ही लग्नस्थ ही क्यों न हों। ऐसा ब्रह्मा ने कहा है।

सर्वशोभनसम्पन्ना अपि सर्वे ग्रहा बत।

कर्मदा न शुभा भुक्तौ किं पुनश्चातिशोभनाः ।।36।।

मनुमती व्याख्या-सभी ग्रह सर्व शोभन से सम्पन्न कर्म में प्राप्त भी शुभ नहीं होते हैं। नूतन भोजन में पुनः अन्य स्थानों में शोभन होते हैं।

शुक्रारज्ञाः क्रमाद् याताः सप्तमाष्टमधर्मभिः।

भोज्यभोक्तृनवत्वेते सर्वथा मरणप्रदाः ।।37।।

शुक्र, मङ्गल और बुध क्रमशः सप्तम, अष्टम और धर्म (नवम) में प्राप्त हों, तो भोज्य और भोजन करने वाले के लिए मरणप्रद होते हैं।

अनुक्ते वापि यः स्थाने स्थितोऽतिबलवान् ग्रहः।

मित्रदृष्टः स्वतुङ्गे वा स्ववर्गे वाऽतिशोभनः ।।38।।

अनुक्त स्थानों में भी जो ग्रह अतिबलवान् होकर स्थित हों, मित्र द्वारा दृष्ट अथवा अपने उच्च स्थान में हों एवं अपने वर्ग में तो अत्यन्त शुभ होते हैं।

येषु भावेषु योगेषु स्थिताः सर्वे ग्रहास्तदा।

भावदोषान्न दद्युस्ते योगवल्लभतः स्वयम् ।।39।।

समस्त ग्रह जिन भावों में तथा योगों में स्थित होते हैं, वे अपने भाव के दोषों को नहीं प्रदान करते हैं, वे योग के अनुसार स्वयं प्रियता को प्राप्त करते हैं।

चन्द्रः सत्कर्मकर्ता च शुभांशे च शुभेच्छितः।

भुक्तौ शुभकरो योगो जीवे केन्द्रकोणगे।।40।।

शुभांश में शुभ को देखने वाला चन्द्रमा अच्छा कर्म कराने वाला होता है। नूतन भोजन में गुरु के केन्द्र और त्रिकोण में होने पर शुभकारक योग होता है।

त्रिषडायेस्वथैकस्मिन्नक्रूरे बलसमन्वितैः।

केन्द्रे शुभे बलयुते योगो भोजनशोभनः ।।41।।

अक्रूर (शुभ) ग्रह तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में एक ही स्थान में बल से समन्वित होने पर तथा केन्द्र में शुभ कहे गये हैं। यह योग भोजन में शुभ होता है।

सितपक्षे शुभांशस्थे चन्द्रे जीवस्त्रिकोणगे।

शुक्रे च कण्टके लग्नाद्योगोऽयं न च भोजने।।42।।

शुक्ल पक्ष में शुभ अंशों में स्थित चन्द्रमा, त्रिकोण में गुरु के होने पर, लग्न से शुक्र के कण्टक स्थानों में होने पर यह योग भोजन में शुभ नहीं होता है।

लग्ने जीवे रिपौ पापे केन्द्रगे बलवत्सिते।

सिते पक्षे शुभांशस्थे चन्द्रो योगः सुशोभनः।।43।।

लग्न में गुरु, षष्ठ स्थान में पाप ग्रह, केन्द्र में बलवान् शुक्र और शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा शुभांश में स्थित हों तो सुशोभन योग होता है।

लग्नार्थे भ्रातृगेहस्था जीवज्ञार्कसिताः क्रमात्।

चन्द्रे च शुभकार्यस्थे भुक्तौ योगः सुधासमः।।44।।

लग्न और द्वितीय एवं भ्रातृभाव में क्रमशः गुरु, बुध और शुक्र हों और चन्द्रमा शुभभाव में स्थित हो तो यह योग नूतन भोजन के समय अमृत के समान होता है।

भवोदयार्थभ्रातृस्था मन्दशुक्रज्ञभास्कराः।

क्रमाद् रवौ कुजे वापि योगेऽमृतसमोऽशने।।45।।

भव (एकादश), जन्म, द्वितीय एवं तृतीय भाव में क्रमशः शनि, शुक्र, बुध और सूर्य हों अथवा इन भावों में किसी एक भाव में सूर्य तथा मङ्गल का योग हो, तो भोजन में यह योग अमृत के समान होता है।

बुधशुक्रेण जी वास्युर्व्ययलग्नाय केन्द्रगः।

शुभांशे शीतगौ भोक्तुर्दद्युरायुः श्रियं शुभाम्।।46।।

बुध और शुक्र तथा गुरु का योग व्यय, लग्न एकादश अथवा केन्द्र में हों एवं शुभांश में चन्द्रमा हो तो, भोजन करने वाले को शुभ लक्ष्मी और आयु प्राप्त होती हैं।

एवं भोज्यनवत्वे च कथितं ब्रह्मणा स्वयम्।

स्वामिप्रसादसम्मानाश्चारुचिह्नादयस्तथा ।।47।।

इस प्रकार स्वयं ब्रह्मा ने नूतन भोजन का मुहूर्त कहा है। इससे स्वामी की प्रसन्नता, सम्मान तथा सुन्दर चिह्न आदि की प्राप्ति होती है।

पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायने ।

शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि॥ नारदः

इति नारदवचनं तत्क्षत्त्रियविषयम् । पट्टबन्धनसाहचर्यात् । जन्मर्क्षे विकल्प इति ।

पट्टबन्धन संस्कार क्षत्रियों में प्रचलित हैं ऐसा महर्षि नारद जी का वचन हैं। शिशु के जन्म नक्षत्र अन्नप्राशन संस्कार उत्तम माना गया हैं लेकिन अन्य कार्यों में विद्यारंभ ,चूडाकर्म इत्यादि संस्कारों में निषिद्ध हैं।

॥अथ योग विचारः । बृहस्पतिः॥

न वैधृतो व्यतीपाते विष्ट्यां गण्डातिगण्डयोः।

मूले वज्रे न परिघे बालान्नप्राशनं हितम्॥

विधृति, व्यतीपात, विष्टि,अतिगण्ड, वज्र, परिघ आदि योगों को त्याग कर अन्य किसी योग में अन्नप्राशन हितकारी होता हैं अर्थात् शुभ है।

॥प्रयोगपारिजाते । प्राशनविधिमाह वसिष्ठः॥

देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गगतस्य च ।

अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे स काञ्चने ॥

मध्वाज्यशर्करोपेतं प्राशयेत्पायसं तु तत् इति ॥

कृतप्राशनमुत्सङ्गाद्धात्री समुत्सृजेत्। कार्यं तस्य परिज्ञानं जीविकाया अनन्तरम्।।

देवताग्रेऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः।

शास्त्राणि चैव शास्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम्।।

प्रथमं यात्स्पृशेद् बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा।

जीविका तस्य बालस्य तेनैवेति भविष्यति।। (पा.गृ.सू. 1.11.13)

इकाईः2,अन्नप्राशन संस्कार सामग्री एवं सिद्धता

2.1 .**अन्नप्राशन संस्कार सामग्री**- गुणवत्ता से युक्त पूजन एवं हवन हेतु सामग्री -सप्त मृत्तिका, कुश, तिल, सुवर्णशलाका, स्वर्ण का सिक्का, जौ, गुड, चीनी, हल्दी साबूत और पीसी, यज्ञोपवीत,पीली सरसों,रोरी, सिन्दूर,पीला और लाल अष्टगन्ध, लाल सिन्दूर, सर्वौषधी, सुपारी, लौंग, इलायची, गोला, हरा, नारियल, सूखा नारियल, अक्षत, पंचमेंवा, धूपबत्ती, रुई, कपूर, कलावा, बताशे,एवं मिष्ठान, गंगाजल, लाल पीला वस्त्र, लकडी की चौकी, ताम्बा एवं मिट्टी के कलश, सरैया, दीपक, आम की समिधा, नवग्रह समिधा(अर्क,पलाश, खदिर,अपमार्ग, दूर्वा, दर्भ,) हवन सामग्री हवन पात्र(स्रुक्,स्रुवा, प्रोक्षणी, प्रणिता, स्फ्य, आज्य, पात्र ,पूर्णपात्र) कुशा, कमलगट्टा, लाल पीली धोती, कलम, खडिया-पट्टि, नूतन कोपर की थाली, लोटा, कटोरी, चम्मच, कैंची, ब्राह्मणों के लिए मधुपर्क (धोती वस्त्र एवं पंचपात्र) केले के पत्ते, आम के पत्ते, पान के पत्ते, दूर्वा, फूल, फूल माला, तुलसीदल, पूजनवेदी तथा यज्ञवेदी बनाबे हेतु मिठ्ठी एवं गाय का गोबर् नवीन ईंट, स्वच्छ जल आदि सामग्री की आवश्यकता होती हैं।

अन्नप्राशन संस्कार पूजन एवं हवन हेतु विशेष सामग्री षड्रस (मधुर,आम्ल, तिक्त,लवण,कशाय,कटु) इत्यादी रसयुक्त पदार्थ अथवा साक्षात षड्रसों की आवश्यता विशेष रुप से होती हैं।

2.2. पूजन पूर्व सिद्धता- स्वच्छ एवं गुणवक्ता युक्त सामग्री के साथ- साथ देश काल स्व शाखा के अनुसार पूजन का आयोजन करना चाहिए और उपर्युक्त समाग्री के साथ निम्नलिखित सामग्री की व्यवस्था पूर्व में ही कर लेना चाहिए।

शिशुनामन्नभुक्त्यर्थं वदामि समयं शुभम्।

आदौ भोजनवत्वे तु भोज्यस्थाप्यं तु नूतने ।।(मु.वि अ. प्रा. प्र 1)

शिशुओं के अन्नप्राशन हेतु शुभ काल को बता रहा हूँ। प्रथम भोजन के लिए नूतन पात्र में भोजन रखना चाहिए।

नवीन पत्ते, मूल फल आदि स्वर्णों के पात्रों में रखकर अन्नप्राशन कराने से बालक सदा समय पर भोजन करता है तथा युद्धादि में भी उसकी रक्षा होती है।

गजहयपरावरपूर्वभाजनेषु नरपतिभिर्बहुमान्यजातिभुक्तौ।

कथितवदखिलं विचिन्तनीयं वरनरदैवविदायदेवमूह्यम्।।(मु.वि अ. प्रा. प्र 50)

नवारामादिभिः सिद्धाः फलपत्रादयस्तथा।

गजादिवाहनाः सर्वे नवभोज्याश्चिरायते ।।(मु.वि अ. प्रा. प्र 49)

नवीन बगीचे इत्यादि में पकाकर किया गया फल, पत्र, अन्न आदि का प्रयोग, अन्नप्राशन में किया जाए, तो हाथी, घोड़े आदि सवारियों से सम्पन्न शिशु लम्बी आयु पर्यन्त जीवित रहता है।

इकाईः3, अन्नप्राशन संस्कार प्रयोग विधि

देव पूजन की प्रविधि सामान्यतया अतिथि सत्कार की पुरातन परंपरा के समान है, इसके अन्तर्गत हम भगवान का आवाहन करते हुए उपर्युक्त विभिन्न सामग्री से उनकी सेवा सत्कार की भावना करते हैं। इसी के समानांतर दो अन्य बिन्दु भी जुड़ जाते हैं-

प्रथम- स्वयं का शुद्धीकरण या पवित्रीकरण तथा ध्यान-प्रार्थना

द्वितीय- जिस सामग्री से हम भगवान का पूजन अर्चन करते हैं, उस पूजन सामग्री का भी शुद्धीकरण या पवित्रीकरण।

इसके अतिरिक्त स्वयं व वस्तु दोनों में ही दिव्य भाव के आवाहन हेतु भी उसके पूजन का विधान करते हैं।

कर्मकाण्ड के साथ-साथ सामान्य तौर पर जो मन्त्रों के पाठ की प्रक्रिया है, उसमें वैदिक,पौराणिक एवं लौकिक मन्त्र पढ़े जाते हैं।

कर्मकाण्डीय दृष्टि से पूजन की विभिन्न एवं विशेष परम्पराएँ होती हैं, जिनमें पञ्चोपचार तथा षोडशोपचार पूजन पद्धति सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

पूजन विधि के लिए कोई एकरूप प्रक्रिया निर्धारित नहीं की जा सकती, क्योंकि अवसर व देव के अनुसार प्रक्रिया परिवर्तित हो सकती है। विद्वानों का मतैक्य और भक्ति के भाव से विधानीकरण किया जा सकता है।

फिर भी जनसामान्य के पूजन-अर्चन के लिए पूजा पद्धति की सामान्य रूपरेखा निर्धारित की जा सकती है। इसके साथ ही कुछ जनसुविधार्थ सामान्य दिशानिर्देश भी बनाए जा सकते हैं, जैसे-

- प्रत्येक पूजारम्भ के पूर्व निम्नांकित आचार-अवश्य करने चाहिए- आत्मशुद्धि, आसन शुद्धि, पवित्री धारण, पृथ्वी पूजन, संकल्प, दीप पूजन, शंख पूजन, घण्टा पूजन, स्वस्तिवाचन आदि।
- भूमि, वस्त्र आसन आदि स्वच्छ व शुद्ध हों।
- आवश्यकतानुसार चौक रंगोली एवं मण्डप बनाएँ।
- मान्यता अनुसार मुहूर्त आदि का विचार किया जा सकता है।
- यजमान पूर्वाभिमुख एवं पुरोहित उत्तराभिमुख बैठे।

- विवाहित यजमान की पत्नी पति के साथ ग्रन्थिबन्धन कर पति की वामंगिनी के रूप में बैठे।
- पूजन के समय आवश्यकतानुसार अंगन्यास, करन्यास, मुद्रा आदि का उपयोग किया जा सकता है।
- औचित्यानुसार विविध देव प्रतीक भी बनाए जा सकते हैं, जैसे-

33 कोटि देवता, त्रिदेव, नवदुर्गा, एकादश रुद्र, नवग्रह, दश दिक्पाल, षोडश लोकपाल, सप्तमातृका, दश महाविद्या, बारह यम, आठ वसु, चौदह मनु, सप्त ऋषि, घृतमातृका, दश अवतार, चौबीस अवतारादि।

ध्यातव्य है कि पूजन के इस प्रकरण के अभ्यास से संकल्प विशेष का परिवर्तन करके विविध पूजा के आयोजन सामान्य रूप से करा सकते हैं।

आचमन- (आत्म शुद्धि के लिए)

ॐ केशवाय नमः

ॐ नारायणाय नमः

ॐ माधवाय नमः।

तीन बार आचमन कर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़कर हाथों को धो लें।

ॐ हृषीकेशाय नमः।।

पुनः बाएँ हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से अपने ऊपर और पूजा सामग्री पर निम्न श्लोक पढ़ते हुए छिड़कें।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु, ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

आसन शुद्धि-

नीचे लिखे मन्त्र का उच्चारण कर आसन को जल से पवित्रीकरण करें-

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता।

त्वं च धारय मां देवि! पवित्रां कुरु चासनम्।।

शिखाबन्धन-

ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषि मानो गोषु मानोऽअश्वेषुरीरिषः।मानोव्वीरान्त्रुद्रभामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामह।। ॐ चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेजः समन्विते।

तिष्ठ देवि शिखाबद्धे तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे।।

कुश धारण-

निम्न मन्त्र से बांये हाथ में तीन कुश तथा दाहिने हाथ में दो कुश धारण करें।

ॐ पवित्रोस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।

तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्ययत्कामः पुनेतच्छकेयम्।

पुनः दांयें हाथ को पृथ्वी पर उलटा रखकर "ॐ पृथिव्यै नमः" इससे भूमि की पञ्चोपचार पूजा का आसन शुद्धि करें।

यजमान तिलक-

पुनः ब्राह्मण यजमान के ललाट पर कुंकुम तिलक करें।

ॐ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।

तिलकान्ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थसिद्धये।

हाथ में लिए पुष्प और अक्षत गणेश एवं गौरी पर चढ़ा दें। पुनः हाथ में पुष्प अक्षत आदि लेकर मंगल श्लोक पढ़े।

जलपात्र का पूजन-

इसके बाद कर्मपात्र में थोड़ा गंगाजल छोड़कर गन्धाक्षत, पुष्प से पूजा कर प्रार्थना करें।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि! सरस्वति!।

नर्म्मदे! सिन्धु कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

अस्मिन् कलशे सर्वाणि तीर्थान्यावाहयामि नमस्करोमि।

कर्मपात्र का पूजन करके उसके जल से सभी पूजा वस्तुओं पर छिड़कें.

घृतदीप पूजन-

"वह्निदैवतायै दीपपात्राय नमः" से पात्र की पूजा कर ईशान दिशा में घी का दीपक जलाकर अक्षत के ऊपर रखकर

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा।

अग्निर्व्वर्च्चो ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्योव्वर्चोज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा ।।

ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा।।3.9।।

भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।

यावत्पूजासमाप्तिः स्यात्तावदत्रा स्थिरो भव।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दीपस्थदेवतायै नमः आवाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि।

शंखपूजन-

शंख को चन्दन से लेपकर देवता के वायीं ओर पुष्प पर रखकर शंख मुद्रा करें।

ॐ शङ्खं चन्द्रार्कदैवत्यं वरुणं चाधिदैवतम्।

पृष्ठे प्रजापतिं विद्यादग्रे गङ्गासरस्वती।।

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया।

शंखे तिष्ठन्ति वै नित्यं तस्माच्छंखं प्रपूजयेत्।।

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।

नमितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य! नमोऽस्तुते।।

पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि तन्नः शंखः प्रचोदयात्।

ॐ भूर्भवः स्वः शंखस्थदेवतायै नमः

शंखस्थदेवतामावाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि।

घण्टा पूजन-

ॐ सर्ववाद्यमयीघण्टायै नमः,

आगमार्थन्तु देवानां गमनार्थन्तु रक्षसाम्।

कुरु घण्टे वरं नादं देवतास्थानसन्निधौ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः घण्टास्थाय गरुडाय नमः गरुडमावाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।

गरुडमुद्रा दिखाकर घण्टा बजाएँ। दीपक के दाहिनी ओर स्थापित कर दें।

3.1 गणपत्यादिपूजन-

गणेशादि स्मरण एवं आवाहन- हाथ में अक्षत लेकर गणेशजी का आवाहन करें।

ॐ ग॒णानां॑त्वा ग॒णप॑तिꣳ हवामहे प्रि॒याणां॑त्वा प्रि॒यप॑तिꣳ हवामहे निधी॒नान्त्वा॑ निधि॒पतिꣳ हवामहे व॒सो मम। आहम॑जानि गर्ब्भ॒धमात्त्वम॑जासि गर्ब्भ॒धम्।। 23.19।।

एह्येहि हेरम्ब महेशपुत्र! समस्तविघ्नौघविनाशदक्ष!।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि च।

हाथ के अक्षत को गणेश जी को अर्पण करें।

पुनः अक्षत लेकर गणेशजी की दाहिनी ओर गौरी जी का आवाहन करें।

गणेशपूजनादि नान्दीश्राद्धों का प्रयोग

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः।ग्रामदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।

लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः।। 1।।

वक्रतुण्ड! महाकाय! कोटिसूर्यसमप्रभ ! ।

निर्विघ्नं कुरु मे देव! सर्वकार्येषु सर्वदा।। 2।।

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।

द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि।। 3।।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।

सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।। 4।।

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।

प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये।। 5।।

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुराऽसुरैः ।

सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः।। 6।।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके!।

शरण्ये त्रयम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते।। 7।।

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।

येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः।। 8।।

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।

विद्यावलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि।। 9।।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।

येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः।।10।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।11।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।12।।

स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते ।

पुरुषं तमजं नित्यं ब्रजामि शरणं हरिम्।।13।।

सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।

देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः।।14।।

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।

वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्।।15।।

कृतमङ्गलस्नानः स्वलङ्कृतः सम्भृतमङ्गलसम्भारः कृतनिर्णेजनान्त- पञ्चमहायज्ञान्तनित्यक्रियः परिहिताहतसोत्तरीयवासा यजमानो मङ्गल- रङ्गवल्लीमण्डितशुद्धस्थले श्रीपर्ण्यादिप्रशस्तदारुनिर्मिते कुशोत्तरकम्बलाद्यास्तृते स्वासने ऊर्णवस्त्राच्छादिते पीठे प्राङ्मुख उपविश्य पत्नीं स्वदक्षिणतः प्राङ्मुखीमुपवेशयेत् ।। शिखां बद्ध्वा कुशपवित्रधारणम् पवित्रे- स्त्थो0 ॥ आचम्य प्राणानायम्य ।। यजमानललाटे तिलकं कुर्यात् ॐस्वस्तिनऽइन्द्रों...। भद्रसूक्तं पठेत् ।

सङ्कल्पः- विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भारतवर्षे जम्बूद्वीपे अस्मिन्वर्तमाने अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ अनुकमासे अमुकपक्षे अमुक तिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवराजगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थान स्थितेषु सत्सु एवंगुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुक नाम्नः (शर्मा,वर्मा,दास,गुप्तः) अहम् ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थम् मम समस्त ऐश्वर्याभिवृद्ध्यर्थम् अप्राप्तलक्ष्मी प्राप्त्यर्थम् प्राप्तलक्ष्म्याश्चिरकालसंरक्षणार्थं सकलमनेप्सितकामनासंसिद्ध्यर्थं लोके सभायां राजद्वारे वा सर्वत्र यशोविजयलाभादिप्राप्त्यर्थम् मम इह जन्मनि जन्मान्तरे वा सकलदुरितोपशमनार्थं मम सभार्यस्य सपुत्रस्य सबान्धवस्य अखिलकुटुम्बसहितस्य सपशोःसमस्तभयव्याधिजरापीडामृत्युपरिहारद्वारा आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धयर्थं मम जन्मराशेः अखिलकुटुम्बस्य वा जन्मराशेः सकाशात् येकेचित् विरुद्धचतुर्थाष्टमद्वादशस्थानस्थित क्रूरग्रहाः तैः सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशद्वारा एकादशस्थानस्थितवत् शुभफलप्राप्त्यर्थं पुत्रपौत्रादिसन्ततेः अविच्छिन्नवृद्ध्यर्थम् आदित्यादिनवग्रहानुकूलतासिद्ध्यर्थम् इन्द्रादिदशदिक्पाल प्रसन्नतासिद्ध्यर्थम् आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक त्रिविधतापोपशमनार्थम् धर्मार्थकाममोक्षफलावाप्त्यर्थं च श्री.....देवताप्रीत्यर्थं यथाज्ञानेन यथामिलितोपचारद्रव्यैः ध्यानावाहनादिषोडशोपचारैः अन्योपचारैश्च शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं गुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं मम सुतस्य करिष्यमाण संस्काराख्यं..... करिष्ये।।

पुनर्जलमादाय - तदङ्गन्तया गणपतिपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनम् अविघ्नपूजनं मण्डपदेवतापूजनं मातृकापूजनं वसोर्द्धारापूजनम् आयुष्य- मन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं भूमिपूजनम् च करिष्ये।

तदङ्गत्वेन निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं श्रीगणपत्यादिपूजनं च करिष्ये।

तत्रादौ दीपशंखघण्टाद्यर्चनं च करिष्ये।

गणपतिपूजनम्- ताम्रपात्रे सिद्धिबुद्धिसहितं महागणपतिं संस्थाप्य ध्यानम्-उच्चैर्ब्रह्माण्डखण्डद्वितयसहचरं कुम्भयुग्मं दधानं प्रे नागारिपक्षप्रतिभटविकट श्रोत्रतालाभिरामम्।। देवं शम्भोरपत्यं

भुजगपतितनुस्पर्धिवर्धिष्णुहस्तं ध्याये पूजार्थमीशं गणपतिममलं धीश्वरं कुञ्जरास्यम्॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः ध्यायामि।।

आवाहनम्- गणानान्त्वा...। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमःआवाहयामि।।

आसनम्- वर्ष्मोऽस्मिसमानानायुध्यतामिवसूर्यः। इमन्तमभितिष्ठामियोमाश्चाभिदासति।(पा.गृ.) ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः आसनं समर्पयामि।।

पाद्यम्-ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः॥ पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि॥ 31.3॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः पाद्यं समर्पयामि।।

अर्घ्यम् ॐ धामन्ते विश्वम्भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि। अपामनीके समिथे यऽआभृतस्तमश्याम मधुमन्तन्तऽऊर्म्मिम्॥17.99॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः अर्घ्यं समर्पयामि॥

आचमनीयम्-ॐ इमम्मे वरुणश्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥21.1॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः आचमनीयं समर्पयामि।

स्नानम् - ॐ तस्म्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम्॥ पशूँस्ताँश्चक्रे वायुव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ 31.6।। गङ्गा सरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः। स्नापितोऽसि मया देवह्यतः शान्ति कुरुष्व मे। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः स्नानं समर्पयामि।। एकतन्त्रेण पञ्चामृतस्नानम् -

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ॥

सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेभवत्सुरित् ॥34.11

पयो दधि घृतं चैव मधुं च शर्करायुतम् । पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।। ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीशिवपञ्चायतनदेवताभ्यो नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।। अथवा पृथक्पृथक्मन्त्रेण पञ्चामृतस्नानम् ।

पयःस्नानम्- ॐपयसोरूपं यद्द्यवादद्धोरूपङ्गुर्क्कन्धूनि।। सोमस्य रूपंवाजिनःसौम्म्यस्यरूपयामिक्षाम्॥21.19॥ ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ॥ पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥18.36।।

ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः पयःस्नानं समर्पयामि। पयःस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं स0। शुद्धोदकनानान्ते आचमनीय समर्पयामि॥

दधिस्नानम्-ॐ दुधिक्क्राव्णोऽअकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः॥ सुरभि नो मुखा कर्त्प्र णऽआयूꣳषि तारिषत्।।23.32।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः दधिस्नानं समर्पयामि।। घृतस्नानम्- ॐ घृतेनाञ्जन्त्सम्पथो देवयानान्प्रजानभवाश्रयष्व्येवाज्यप्येतु देवान्।अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताꣳ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि॥2.29॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः घृतस्नानं समर्पयामि।

मधुस्नानम्- ॐमधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः॥ माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ॥13.28॥ स्वाहामरुद्भि परिश्रीयस्वद्विव सुस्पृर्शस्पाहि। मधुमधुमधु।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः मधुस्नानं समर्पयामि।।

शर्करास्नानम् - ॐ अपा꣣ रसमुद्वयसꣳ सूर्य्ये सन्तꣳ समाहितम् ॥ अपा꣣ रसस्य यो रसस्तँवो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।9.3।।

ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः शर्करास्नानं समर्पयामि॥

गन्धोदकस्नानम्- ॐ गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुवेण धर्म्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः।।2.3।।

ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः गन्धोदकस्नानं समर्पयामि।

उद्वर्तनस्नानम् - ॐ अꣳशुना तेऽअꣳशुः पृच्यता परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः॥2.27॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः उद्वर्तनस्नानं समर्पयामि॥ सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्प्य निर्माल्यमुत्तरे विसृज्य अभिषेकःॐआपोहि. योन0 तस्म्मा0 ॐ अमृताभिषेकोऽस्तु। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः अभिषेकस्नानं समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नानम्- ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्ण्णा यामाऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः

पार्ज्जन्या॑ ।।34.3।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।। गणेशं वस्त्रेण प्रमृज्य रक्तवस्त्रप्रसारिते मृन्मये पीठे पट्टे वा अरुणाक्षतैर्गोधूमेर्वा कृतेऽष्टदले पद्मे गन्धानुलेपनपूर्वकं संस्थाप्य

वस्त्रम् ॐ सुजा॑तो ज्योति॑षा स॒ह शर्म्म॒ वरू॑थमासदत्स्व॒ ÷॥ वासो॑ऽअग्ने वि॒श्वरू॑पꣳ सँव्व्य॑यस्व विभावसो।।11.40।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः वस्त्रं समर्पयामि। वस्त्रान्ते आसनं समर्पयामि ॥

उपवीतम्- यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलबस्तु तेजः॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि।। यज्ञोपवीतान्ते आ. समर्पयामि॥

गन्धम् ॐ त्वाङ्गन्धर्वाऽअ॑खनँस्त्वामिन्द्रस्त्वाम्बृहस्पतिः॑ ÷ ॥ त्वामो॑षधे सोमो॒ राजा॑ वि॒द्वान्यक्ष्मा॑दमुच्यत ।12.98।। श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः गन्धं समर्पयामि॥

अक्षताः- ॐ अक्क्षुन्नमी॑मदन्त॒ ह्य्यवं॑ प्रि॒याऽअ॑धूषत। अस्तो॑षत॒ स्व- भा॑नवो॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती योजा॒ न्वि॒न्द्र ते॒ हरी॑।।3.51।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः अक्षतान्समर्पयामि।

पुष्पाणि- ॐ यत्पुरुषं..।।ॐ ओष॑धीः॒ प्रति॑मोदध्वम्पुष्प्प॑वतीः॒ प्रसूव॑रीः॒॥ अश्वा॑ऽइव सजित्त्व॑रीर्वी॒रुध॑÷ पारयिष्णव॒÷ ।।12.77।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः पुष्पाणि समर्पयामि॥

दूर्वाङ्कराः- काण्डा॑त्काण्डात्प्र॒रोह॑न्ती॒ परु॑षःपरुष॒स्परि॑। ए॒वा नो॑ दूर्वे प्रत॑नु स॒हस्रे॑ण श॒तेन॑ च॥13.20।। ॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः दूर्वाङ्कुरान्समर्पयामि॥

सौभाग्यद्रव्याणि- ॐ अहि॑रिव भो॒गै पर्य्ये॑ति बा॒हुज्या॑या॑ हे॒तिम्प॑रि॒बाध॑मानः।ह॒स्त॒घ्नो वि॒श्वा॑ व॒युना॑नि वि॒द्वान् पुमा॒न् पुमा॑ꣳसम्परि॑ पातु वि॒श्वतः॑॥29.51॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः सौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि।

धूपः- ॐ अश्व॑स्यत्त्वा॒ वृष्ण॑÷ श॒क्ना धू॑पयामि देव॒यज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खायत्त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे।त्त्वा॒ वृष्ण॑÷ श॒क्ना धू॑पयामि देव॒यज॑ने पृथि॒व्याः।म॒खाय॑ त्त्वाम॒खस्य॑ त्त्वा शी॒र्ष्णे।अश्व॑स्यत्त्वा॒ वृष्णा॑÷ श॒क्ना धू॑पयामि देव॒यज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खाय॑त्त्वा म॒खस्य॑

त्त्वा शी॒र्ष्णो। म॒खाय॑ त्त्वा म॒खस्य॑ त्त्वा शी॒र्ष्णो। म॒खाय॑ त्त्वा म॒खस्य॑ त्त्वा शी॒र्ष्णो। म॒खाय॑ त्त्वा म॒खस्य॑ त्त्वा शी॒र्ष्णो।।37.9॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः धूपमाघ्रापयामि।

दीपः- ॐ च॒न्द्रमा॑ऽअ॒प्स्वन्तरा सु॑प॒र्णोधा॑वतेदि॒वि। र॒यिम्पि॒शङ्ग॑म्बहु॒लम्पु॑रुस्पृह॒ꣳ हरि॑रेति॒ कनि॑क्क्रदत्॥33. 90॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः दीपं दर्शयामि।।

नैवेद्यम्- ॐअन्न॑प॒तेऽन्न॑स्य नो देह्यनमी॒वस्य॑ शु॒ष्मिण॑ं÷। प्रप्र॑ दा॒तारन्तारिष॒ऽऊर्ज्जं॑ न्नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॥॥11. 83॥ गायत्री मन्त्रेण सम्मोक्ष्य घेनूमुद्रां प्रदर्श्य ग्रासमुद्रया ॐप्राणाय स्वाहा ॐ अपानाय स्वाहा ॐ ध्यानाय स्वाहा ॐ उदानाय स्वाहा ॐसमानाय स्वाहा। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः नैवेद्यं निवेद्यामि। पूर्वापोशनं समर्पयामि। नैवेद्यमध्ये पानीयम्- एलोशीरलवङ्गादिकर्पूरपरिवासितम्। प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः मध्येपानीयं समर्पयामि। उत्तरापोशनं समर्पयामि। हस्तप्रक्षालनं समर्पयामि। मुखप्रक्षालनं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। करोद्वर्तनायें गन्धं समर्पयामि। मुखवासार्थे ताम्बूलं- ॐ उ॒तस्म्मा॑स्य॒ द्रव॑तस्तुरण्य॒तः॑ प॒र्णन्न वेरेनु॑वातिप्रग॒र्द्धिन॑÷।। श्ये॒नस्ये॑व॒ द्ध्रज॑तोऽअङ्क॒सम्परि॑ दधि॒क्क्राव्ण॑ः÷ स॒होर्ज्जा तरि॑त्र॒तः॑स्वाहा॑।।9.15।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः ताम्बूलं समर्पयामि॥

फलम्- ॐया॑ः फ॒लिनी॒र्य्याऽअ॑फ॒लाऽअ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणी॑ः। बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वꣳह॑सः।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः फलं समर्पयामि॥

दक्षिणा- ॐ यद्दत्तं॑ व्यय॒त्प॑रा॒दानं॒ व्यत्पू॒र्त्तं व्याश्च॒दक्षि॑णाः। तद॒ग्निर्वै॑श्व॒कर्म्म॒णः॑ स्व॑र्द्दे॒वेषु॑ नोदधत्॥18.64॥ ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः सुवर्णपुष्पदक्षिणां समर्पयामि॥

कर्पूरारार्तिक्यम्- ॐ आ रा॑त्रि॒ पार्थि॑व॒ꣳ॒ रज॑÷ पि॒तुर॑प्रायि॒ धाम॑भिः। दि॒वः॑ सदा॑ꣳसि बृह॒ती वि॒ तिष्ठस॒ऽआ त्वे॒षन्व॑र्त्तते॒ तम॑÷।।34.32।। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः कर्पूरारार्तिक्यं दर्शयामि॥

मन्त्रपुष्पाञ्जलिः- अञ्जलौ पुष्पाण्यादाय तिष्ठन् ॐनमो॑ग॒णेब्भ्यो॑ ग॒णप॑तिब्भ्यश्च वो॒नमो॒नमो॒व्राते॑

ब्योव्रातपतिब्यश्चवोनमोनमोगृत्सेब्योगृत्सपतिब्यश्चवोनमोनमोविरूपेब्यो विश्वरूपेब्यश्चवोनमोनमःसेनाब्यः॥16.25॥ **ॐभूर्भुवः स्वः** सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। प्रदक्षिणा-सप्तास्यो0 ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि ॥ अर्घ्यपात्रे जलं प्रपूर्य रक्तचन्दनपुष्पाक्षतसाहितं नारिकेलं च धृत्वा विशेषार्घः रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक। भक्तानामभयंकर्ता त्राता भव भवार्णवात्। द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो। वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्यद।। अनेन सफलार्घेण फलदोऽस्तु सदा मम। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः विशेषार्घं समर्पयामि।

प्रार्थना-विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय। नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते। नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः। नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः। विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे। भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायकं लम्बोदरं नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय! निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा। त्वां विघ्नशत्रुदल नेति च सुन्दरेति भक्तप्रियेति सुखदेति वरप्रदेति। विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव। ॐभूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितमहागणपतये नमः प्रार्थनापूर्वकं नमस्करोमि। अनया **पूजया सिद्धिबुद्धिसहितः महागणपतिः साङ्गः सपरिवारः प्रीयतां न मम। ॥ इतिगणपतिपूजनम् ।।**

3.2 पुण्याहवाचप्रयोगः- **स्वपुरतः शुद्धायां भूमौ पञ्चवर्णैस्तन्दुलैर्वाऽष्टदलं कर्तव्यम्।** तत्र भूमिं स्पृष्ट्वा ॐमहीद्यौः पृथिवीचनऽइमँयज्ञम्मिमिक्षताम्॥ पिपृतान्नोभरीमभिः॥8.32॥ तत्र यवप्रक्षेपः- ॐओषधय समवदन्तसोमेनसहराज्ञा। यस्मै कृणोतिब्राह्मणस्तराजन्पारयामसि।।93.12।।

अष्टदलोपरि कलशस्थापनम्- ॐआजिग्घ्रकलशम्मह्यात्त्वांविशन्त्विन्दवः।पुनरुर्ज्जानिवर्त्तस्वसानः सहस्रन्धुक्क्ष्वोरुधारापयस्वतीपुनर्म्मार्विशताद्रयिः॥8. 42॥

कलशेजलपूर्णम्- ॐवरुणस्योत्तम्भनमसिवरुणस्यस्कम्भसर्ज्जनीस्थोवरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽ ऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद॥4. 36॥

गन्धप्रक्षेपः- ॐत्वाङ्गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वाम्बृहस्पतिः। त्वामोषधेसोमोराजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत।।12.98॥

धान्यप्रक्षेपः- ॐधान्य मसिधिनुहिदेवान्प्राणायत्त्वोदानाय त्त्वाव्व्यानाय त्त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृब्ण्णात्त्वच्छिद्रेण पाणिनाचक्षुषे त्त्वा महीनाम्पयोऽसि॥1.20॥

सर्वौषधीप्रक्षेपः- ॐया ओषधीः पूर्वा जाता देवेब्य्यस्त्रियुगम्पुरा। मनै नु बब्भ्रूणामहः शतन्धामानि सप्त च ॥12.75॥

दूर्वाप्रक्षेपः- काण्डात्त्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषःपरुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥13.20।।

पञ्चपल्लवमक्षेपः- ॐअश्वत्थे वो निषदनम्पर्णे वोवसतिष्कृता। गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥12. 79॥

सप्तमृदप्रक्षेपः-ॐस्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म्मसप्प्रथाः॥36.13॥

फलप्रक्षेपः- ॐयाः फलिनीर्य्याऽअफलाऽअपुष्प्यायाश्चपुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वहसः॥12.89॥

पञ्चरत्नप्रक्षेपः- ॐपरि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानिदाशुषे॥11.25॥

हिरण्यप्रक्षेपः- ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रेभूतस्यजातः पतिरेकऽआसीत्। सदाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥13.4॥ रक्तसूत्रेण वस्त्रेण च वेष्टयेत् - ॐयुवासुवासाःपरिवीतऽआगात्सऽउश्रेयान्भवतिजायमानः।। तंधीरासः कवयऽउन्नयन्तिस्वाध्योमनसादेवयन्तः। पा.गृ.का.2कं.2मं.9॥ पूर्णपात्रमुपरि न्यसेत् ॐ पूर्णादर्वि परा पतसुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्जः शतक्रतो।।3.49॥ वरुणमावाहयेत ॐ तत्त्वायामीत्यस्य शुनः शेपऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः वरणोदेवता वरुणावाहने विनियोगः ॐ तत्त्वायामि ब्रह्म्मणाव्वन्दमानस्तदाशास्तेयजमानोहविर्भिः। अहेडमानोव्वरुणेहबोद्ध्यरुंशः समानऽआयुःप्रमोषीः।।18.49।। भूर्भुवः स्वः अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गसपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि स्यापयामि। प्रतिष्ठापनम्- ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्टं य्यज्ञः समिमन्दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामोँम्प्रतिष्ठ॥2.13 ॥ ॐवरुणाय नमः वरुण सुप्रतिष्ठितो वरदो भव। ॐभूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः चन्दनं समर्पयामि। इत्यादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य तत्त्वायामीति पुष्पाञ्जलिं

समर्प्य अनेन पूजनेन वरुणः प्रीयताम् ।। ततः अनामिक्रया कलशं स्पृष्ट्वा अभिमन्त्रयेत्-कलशस्थ मुखे.। कुक्षौ तु...। अङ्गेश्च सहिता.। आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः।। ततो गायत्र्यादिभ्यो नमः इत्यनेन पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य कलश प्रार्थयेत्- देवदानव संवादे.। त्वत्तोये.। शिवः स्वयं.। त्वयि तिष्ठन्ति.। सान्निध्यं कुरुमे देव प्रसन्नो भव सर्वदा। नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय। सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते। पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनीजीवनायक। पुण्याहवाचनं यावत्तावर्त्त्वे सन्निभो भव। ततः स्वस्तिवाचनार्थं युग्मविपान्सम्पूज्य। अवनिकृत- जानुमण्डलः कमलमुकुल सदृशमञ्जलिं शिरस्याघाय दक्षिणेन पाणिना स्वर्णपूर्णकलशं धारयित्वा वदेत् ॐ त्रीणि॑ प॒दा वि॒चक्र॑मे॒ विष्णु॑र्ग्गो॒पाऽअदा॑ब्भ्यः।अतो॒ धर्म्मा॑णि धा॒रय॑न्॥34.43॥ दीर्घा नागा नद्यो गिर-यस्त्रीणि विष्णुपदानि च ॥ तेनायुः प्रमाणेन पुण्यं पुण्या दीर्घमायुरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ।। विप्रा वदेयुः तेनायुः प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु एवं वारत्रयं कृत्वा कलशं भूमौ धान्यराशी संस्थाप्य। ब्राह्मणानां हस्ते सुप्रोक्षितमस्तु। शिवा आपः सन्तु। सन्तु शिवा आपः। सौमनस्यमस्तु। अस्तु सौमनस्यम्॥ अक्षतं चारिष्टं चास्तु। अस्त्वक्षतमरिष्टं च। गन्धाः पान्तु सौमङ्गल्यं चास्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐगन्धाः पान्तु सौमङ्गल्यं चास्तु।। अक्षताः पान्तु आयुष्यमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐ अक्षताः पान्तु आयुष्यमस्तु। पुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐपुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्तु। ताम्बूलानि पान्तु ऐश्वर्यमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐताम्बूलानि पान्तु ऐश्वर्यमस्तु। पूगीफलानि पान्तु बहुफलमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐपूगीफलानि पान्तु बहुफलमस्तु। दक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐदक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्तु। ॐ दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं वहुपुत्रञ्चास्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। ब्राह्मणा वदेयुः- ॐदीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं चास्तु। यजमानो वदेत्-यकृत्वा सर्ववेदयज्ञक्रियाकरणकर्मारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्तन्ते तमहमोङ्कारमादिङ्कृत्वा ऋग्यजुःसामाथर्वणाशीर्वचनं वहुऋषि मतं समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये। ॐवाच्यताम्। अथाशीर्वादः। ब्राह्मणानां हस्तेष्वक्षतान्दद्यात्॥

यजुः-ॐ भद्रं कर्णे॑भिः शृणुयाम देवाः । भद्रं प॑श्येमाक्षभिर्यजत्राः।स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ स॑स्त॒नूभिः। व्यशेम दे॒वहितँय्यदायु÷ ।।21.25।। ॐदे॒वाना॑म्भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तान्दे॒वाना॑ꣳ रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम्। दे॒वाना॑ꣳस॒क्ख्यमुप॑सेदिमा व॒यन्दे॒वा न॒ऽआयुः॑ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑ ।।25.15॥ ॐ दी॒र्घायु॑स्त॒ऽओषधेखनि॒तायस्म्मै॑ च त्त्वा॒

खनाम्म्यहम्। अथो त्वन्दीर्घायुर्भूत्त्वा शतवल्शाविरोहतात्।।12.100।। ऋक् ॐ द्रविणोदाद्रविणसस्तुरस्यद्रविणोदाःसनरस्य प्रर्यसत्।। द्रविणोदावीरवतीमिषनोद्रविणोदारासतेदीर्ध मायुः॥अष्टक(1/4.7) ॐयजुः- द्रविणोदाः पिपीषतिजुहोतप्रचं तिष्ठ्ठत। नेष्टादृतुभिरिष्य्यत॥26.22॥ ऋक् ॐ सवितापश्चातात्सवितापुरस्तात्सवतोत्तरात्तात्सवितायरात्तात्॥ सवितानः सुवतुसर्वतातिसवितानोरासतां दीर्घमायुः॥7/1.8॥ यजुः- ॐसविता त्वा सवानाᳬं सुवतामग्गिर्गृहपतीनाᳬं सोमो वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्वाचऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुब्भ्यो मित्रः सत्त्यो वरुणो धर्म्मपतीनाम्॥9.39॥ ऋकू-ॐनवोनवोभवतिजायमानोह्नां केतुरुष सामेत्यग्रम्।। भागदेवेभ्यो विदधात्यायन्प्रचन्द्र मास्तिरतैदर्घिमायुः॥8/23.3॥ यजुः- ॐ न तद्रक्षाᳬंसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः÷ प्रथमजᳬं ह्येतत्। योबिभर्त्तिदाक्षायणᳬ हिरण्यᳬ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः समनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः÷॥34.51॥ ऋक्- ॐ उच्चादिविदक्षिणावन्तोऽअस्थुर्येऽअंश्वदाः सहतेसूर्येण। हिरण्यदाऽअमृतत्वंभ जंतेवासोदाः सौमप्रतिरंतऽआर्युः।।8.3.6।। यजुः- **ॐउच्चाते जातमन्धसोदिविसद्भूम्म्यादंदे। उग्र शर्म्ममहि श्रवश्रव॥8.3.6॥ इत्याशीर्वादः॥** व्रतजपनियमतपः स्वाध्यायक्रतुदयादमदानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम्॥ समाहितमनसः स्मः॥प्रसीदन्तु भवन्तः॥प्रसन्नाः स्मः।। ॐशान्तिरस्तु॥अस्तु!॥ ॐतुष्ठिरस्तु॥ ॐतुष्टिरस्तु। ॐवृद्धिरस्तु। ॐअवि- घ्नमस्तु। ॐआयुष्यमस्तु। ॐआरोग्यमस्तु। ॐशिवं कर्मास्तु। ॐकर्मसमृद्धिरस्तु। ॐवेदसमृद्धिरस्तु। ॐ शास्त्रसमृद्धिरस्तु। ॐधनधान्यसमृद्धिरस्तु। ॐपुत्रपौत्रसमृद्धिरस्तु।इष्टसम्पदस्तु। ॐअरिष्टनिरसनमस्तु।ॐयत्पापं रोगमशुभमकल्याणं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु।। ॐयच्छ्रेयस्तदस्तु। ॐउत्तरे कर्मणि निर्विघ्नमस्तु। ॐउत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु। ॐउत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सम्पद्यन्ताम्।। ॐतिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रहलग्नसम्पदस्तु। पात्रे उदकसेकः। ॐतिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रहलनाधिदेवताः प्रीयन्ताम्।ॐ तिथिकरणे समुहूर्त्ते सनक्षत्रे सग्रहे साधिदेवते प्रीयेताम्। ॐदुर्गापाश्चाल्यौ प्रीयेताम् ॥ ॐअग्निपुरोगा विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्। ॐइन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्ताम्। ॐ माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्रीयन्ताम्।

ॐअरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् । ॐ विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम्। ॐब्रह्म पुरोगाः सर्वे वेदाः प्रीयन्ताम्। ॐ ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम्। ॐश्रीसरस्वत्यौ प्रीयेताम्। ॐश्रद्धामेघे प्रीयेताम्। ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयेताम्। ॐभगवती माहेश्वरी प्रीयताम् । ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवती सिद्धिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम्।ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम्। ॐ भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् ॥ ॐ सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्ताम् ॥ ॐ सर्वाः ग्रामदेवताः प्रीयन्ताम्। बहिः- ॐ हताश्च ब्रह्मद्विषः। ॐ हताश्च परिपन्थिनः। ॐहृताश्च विघ्नकर्तारः। ॐशत्रवः पराभवं यान्तु। ॐशाम्यन्तु घोराणि। ॐशाम्यन्तु पापानि। ॐशाम्यन्त्वीतयः। पुनः पात्रे-ॐ शुभानि वर्द्धन्ताम्। ॐ शिवा आपः सन्तु। ॐशिवा ऋतवः सन्तु। ॐशिवा ओषधयः सन्तु। ॐशिवा नद्यः सन्तु। ॐशिवा गिरयः सन्तु।ॐशिवा अतिथयः सन्तु। ॐशिवा अग्नयः सन्तु। ॐशिवा आहुतयः सन्तु। ॐ अहोरात्रे शिवे स्याताम्। यजुः- ॐ निका॒मे नि॑कामे नः॑ प॒र्ज्जन्यो॑ व्वर्षतु॒ फल॑वत्त्यो न॒ऽओष॑धयः॑ पच्यन्ताँ य्योगक्षे॒मो नः÷ कल्प्पताम्॥22.22॥ ब्राह्मणम्- ॐ निकामेनिकामेन पर्ज्जन्योवर्षात्वितिनिकामे निकामेवैतत्रपर्ज्जन्योवर्षतियत्रैतेनयज्ञेन यजन्ते फलवत्योनऽऔषधय पच्यन्तामितिफलवत्योवैतत्रौषधय पच्यन्तेयत्रैतेन यज्ञेनयजन्तेयोगक्षेमोन कल्पतामितियोगक्षेमो वैतत्र कल्पते यत्रैतेनयज्ञेन यजन्तेतस्माद्य त्रैतेनयज्ञेन यजन्ते क्लृप्त 8 प्रजानां योगक्षेमोभवति। ॐ शुक्राङ्गारकबुधबृहस्पतिशनैश्चरराहु केतुसोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम्। ॐ भगवान्नारायणः प्रीयताम्। ॐ भगवान्पर्जन्यः प्रीयताम्। ॐ भगवान्स्वामी महासेनः प्रीयताम्। ॐ पुरोनुवाक्यया यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ याज्यया यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ वषट्कारेण यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ प्रातः सूर्योदये यत्पुण्यं तदस्तु। ॐ पुण्याहकालान्वाचायष्ये । ॐ वाच्यताम्। ब्राह्म्यं पुण्यं महद्यच्च सृष्टयुत्पादनकारकम्। वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत्पुण्याह ब्रुवन्तु नः।।1।। भो ब्राह्मणाः! मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया क्रियमाणस्य ..... कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐ अस्तु पुण्याहम्। एवं त्रिः ॥ ऋक् ॐ उद्गातेवशकुने सामगायसि ब्रह्मपुत्रऽइवसवनेषु शंससि। वृषदवाजीशिशुंमतीरपीत्या सर्वतोनः शकुने भद्रमावदावि॒श्वतोनःशकुने पुण्य॒मावद।। यजुः- ॐ पु॒नन्तु॑ मा देवज॒नाः॒ पु॒नन्तु॒ मन॑सा॒धिय॑÷। पु॒नन्तु॒ व्विश्व्वा॑भू॒तानि॒जात॑वेदः॒पुनी॒हिमा॑॥19.39।। ब्राह्मणम् ॐ सवः

कामयेतमहत्प्राप्नुयामित्युदगयनऽआर्पूर्यमाणपक्षे पुण्याहेद्वादशामुपसद्व्रतीभूत्वौदुवरेक सेचमसे- वासर्वौषधम्फलानीतिसम्भृत्यपरिसमुह्यपरिलिप्याग्निमुपसमाधायावृक्षाज्य संस्कृत्यपुसान॒क्षत्रेणम॒न्थःसन्नीय॒जुहोति॥1॥ पृथिव्यामुद्धृतायां तु यत्कल्याणं पुरा कृतम्। ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥2॥ भो ब्राह्मणाः! मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया क्रियमाणस्य ..... कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रवन्तु ॥ ॐअस्तु कल्याणम् ।। एवं त्रिः। ऋक् - ॐअपाः सोमपस्तमिन्द्र प्रयाहिकल्याणीर्जायासुरणं गहते॥ यत्रारथस्य वृहतोनिधानविमोचनं वाजिनोदक्षिणावत्।। यजुः- ॐ यथे॒मांवाचं॑ङ्कल्या॒णीमा॒वदा॑नि॒ जने॑भ्यः। ब्रह्म॒रा॒ज॒न्याभ्याᳬं शूद्राय॒ चार्य्या च॒ स्वाय॒ चार॑णाय च। प्रि॒यो दे॒वाना॒न्दक्षि॑णायैदा॒तुरि॒ह भू॑यासम॒यम्मे॒ कामः॒ समृ॑ध्यता॒मुप॑ मा॒दो न॑मतु।।26.2।। ब्राह्मणम्- ॐअथाध्वर्यो प्रतिगरोरात्सु रिमेय जपानाभद्रमेभ्यो य॒जमानेभ्यो भूदिति कल्याणमेवैतन्मानुष्यैर्वाचोवदति॥2॥ सागरस्य यथा वृद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता। सम्पूर्णा सुप्रभावा च तां च ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः ॥3॥ भो ब्राह्मणाः! मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया क्रियमाणस्य ..... कर्मणः ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु। ॐ कर्म ऋद्धयताम्। एवं त्रिः। ऋक् **- ॐ ऋद्धयाम॒स्तो- मसनुयामत्राजमा नोमन्त्र सरथे होपयातम्॥ यशोनप॒क्कं वधु गोष्व॑तरा भूतां- शोऽअश्विनोःकाम॑माः॥ यजुः- ॐ स॒त्रस्य॒ऽऋद्धि॑र॒स्यग॑न्म॒ज्योति॑र॒मृता॑ऽअभूम।दिव॑म्पृथि॒व्याऽअध्यारुहा॒माविदामदे॒वान्त्स्व॒र्ज्योति॑÷॥8.52॥** ब्राह्मणम्- ॐतऽउत्तरस्यहविर्द्धानस्य जघन्यायाङ्क वर्षा सामाभिगायन्तिसत्रस्यऽऋद्धिरितिराद्धिमेवैतदभ्युत्तिष्ठन्त्युत्तरवेदेर्वोतराया श्रोणावित्तरंतुक्रतूत्तरम् ॥3॥ स्वस्तिस्तु याऽविनाशाख्या पुण्यकल्याणवृद्धिदा। विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः॥4॥ भो ब्राह्मणाः! मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया क्रियमाणस्य ..... कर्मणः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु।। ॐ आयुष्मते स्वस्ति॥ एवं त्रिः॥ ऋक् ॐ स्वस्तिरिद्धिप्रपयेश्रेष्ठारेक्णस्वत्याभिवाममेति॥सानोऽअवासोऽअरणे निपातुस्वावेशावतुदेवगोपा।। **यजुः- स्व॒स्ति न॒ऽइन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः॒ स्व॒स्ति न॑÷ पू॒षा वि॒श्वव॑दाः॒।स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ऽअरि॑ष्टनेमिः॒ स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु॥25.19॥ बाह्मणम् ॐ गातुज्यज्ञायगातुज्यज्ञपतयऽइति गातुह्येषयज्ञायेच्छतिगातुज्यज्ञपतयेयज्ञस्य स स्थान्देवी स्वस्तिरस्तु नः**

स्वस्तिर्मानुष्येभ्यऽइति स्वस्तिनोदेवत्रास्तु स्वस्तिर्मानुष्य त्रेत्येवै तदा होर्ध्वं जिगातु भेषजमित्यूर्ध्वोनोयज्यज्ञोदेवलोकज्यजत्वित्येवैतदाहशन्नोऽअस्तुद्विप्रदेशश्चतुषपदऽइत्येतावद्वाऽइद सर्वज्यावद्विपाच्चैवचतुष्पाश्च तस्माऽएवैतद्यज्ञस्य स्थांगत्वाशंकरोति तस्मादाहणन्नोऽअस्तुद्विपदेशं चतुष्पदे।।4।।

4। समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका। हरिप्रिया च माङ्गल्या तां श्रियं च ब्रुवन्तु नः ।5। भो ब्राह्मणाः! मह्यं सकटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया क्रियमाणस्य .....कर्मणः श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुबन्तु॥ ॐ अस्तु श्रीः॥ एवं त्रिः॥ ऋक् ॐ श्रियेजातः श्रियऽआनिरिथायश्रियं वयोजरितृभ्ययादधाति॥ श्रियं वसानाऽअमृतत्वमाय न्भवन्तिसुत्यासमियामितद्रौ॥ यजुः- ॐ मनसः कामामाकूतिं वाचः सत्यमशीय।पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशःश्रीः श्रयताम्मयि स्वाहा॥2॥ ब्राह्मणम्- ॐ तेनोहततऽईजेदक्ष पार्वतस्तऽइमेप्येतर्हिदाक्षायणाराज्यमिवैव प्राप्ताराज्यमिहवैवप्राप्नोतियऽएवं विद्वाने तेनयज्ञेन यजतेतस्माद्वाऽएते नयजेत सवाऽएकैकऽएवानूचिना हुंपुरोडाशो भवत्येतेनोहास्यासपत्नानुपवाघाश्रीर्भवति ।।5।। कृतेऽस्मिन्पुण्याहवाचने न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनात् श्रीमहागणपतिप्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोऽस्तु। अस्तु परिपूर्णः। अथाभिषेकः॥ कर्तुर्वामतः पत्नीम् उपवेश्य पात्रपातितकलशोदकेन अविधुराश्चत्वारो ब्राह्मणा दूर्वाम्रपल्लवैरुदङ्मुखास्तिष्ठन्तः सपत्नीकं यजमानमभिषिञ्चेयुः। तत्र मन्त्राः ॐ पयः÷ पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ॥ पयस्वतीः प्रदिशः÷ सन्तु मह्यम् ॥18.36।। ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ॥ सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेभवत्सरित् ॥34.11वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽ ऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद।।4.36।। ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः÷। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।।19.39।। ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि।।18.37।। देवस्यत्त्वा। सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भेषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भेषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै

यशंसेऽभिषिंञ्चामि॥20.3॥ ॐविश्श्वांनिदेवसवितर्दुरिता निपरांसुव।। यद्भद्रन्तन्नऽआसुव॥ ॐ धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्म्मा देवो बृहस्पतिं÷। सचेंतसो विश्श्वे देवा यज्ञम्प्रावंन्तु नः शुभे॥18.76॥ ॐ त्वँ ष्वंविष्ठ दाशुषो नृँ॒ पांहि शृणुधी गिरं÷। रक्षां तोकमुतत्कमनां॥18.77॥ ॐ अन्नंपतेऽन्नंस्य नो देह्यनमीवस्यं शुष्मिणं÷। प्रप्रं दातारन्तारिषऽऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुंष्पदे॥(11.83) ॐ द्यौ॒ शान्तिंरुन्तरिंक्षꣳ शान्तिं÷ पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषंधयः शान्तिं÷ ॥ वनस्पतंयः शान्तिर्विश्श्वे देवा॒ शान्तिर्ब्रह्म्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिंरेव शान्तिः सा मा शान्तिंरेधि॥36.17 ॥ ॐ यतोंयतः समीहंसे ततो नोऽअभंयङ्कुरु ॥ शन्नं÷ कुरु प्रजाभ्योभंयन्नः पशुभ्यं÷ ।।36.22।।सुशान्तिर्भवतु।।

ब्राह्मणम्- ॐ पालाशं भवति।। तेनब्राह्मणो भिषिञ्चतिब्रह्मवैपलाशोब्रह्मणैवैनमेतद्भषिञ्चति। औदुम्बरम्भवति।। तेनस्वोभिषिञ्चत्यन्नंवाऽऊर्गुदुम्बरऽऊर्ग्वेंस्वं यावद्वैपुरुषस्यस्वं भवतिनवैता-वदशनायतितेनोर्क स्वतस्मादौदुम्वरेणस्वोभषिञ्चति।। नैष्यग्रोध पादं भवति। तेनस्वोभिषिञ्चत्यन्नंवाऽऊर्ग्वैस्वयं यावद्वैपुरुषस्यस्वं भवति नवैता वदनशनायतितेनोर्कस्वत स्मादौ दुंबरेणस्वोभिषिञ्चति। नैय्यग्रोधपाद् भवति। तेनामित्रोराजन्योभिषिञ्चति पद्भिर्वैन्यग्रोध प्रतिष्ठितो मित्रेणवैराजन्यः प्रतिष्ठितस्तस्मानैय्यग्रोधपादेन मित्रोराजन्योभिषिञ्चति। आश्वत्थं भवति। तेन वैश्योभिषिञ्चति स यदेवादोश्वत्थौतिष्ठतऽइन्द्रोमतऽउपा मन्त्रयते तस्मादाश्वत्थेनवैश्योमषिञ्चति। यद्देवकल्पाञ्जुहोतिप्राणा वैकुल्पाऽअमृत्तमुवै प्राणाऽअमृतेनैवैनमेतदभिषिञ्चति। सर्व्वेषां वाऽएषव्वेदानारसोयत्साम सर्वेषाम्सवैनमेतद्वेदानां रसेनाभिषिञ्चति। शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु।। स्वस्थाने उपविश्य हस्ते जलं गृहीत्वा- अभिषेककर्तृकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथोत्साहं दक्षिणां दास्ये तेन श्रीकर्माधीशः प्रीयताम्। ततः पुत्रवतीभिर्वृद्धसुवासिनीभिर्नीराजनं कार्यम्। तस्य **मन्त्रः- ॐ अनांधृष्टा पुरस्तांदग्नेराधिंपत्त्यऽआयुंर्म्मे दाः। पुत्रवंतीदक्षिणतऽइन्द्रस्याऽधिंपत्त्ये प्रजाम्मेंदाः। सुषदां पश्चाद्देवस्यं सवितुराधिंपत्त्ये चक्षुंर्म्मे दा ऽआयुश्श्रुंतिरुत्तरतो धातुराधिंपत्त्ये रायस्पोषंम्मे दाः। विधृंतिरुपरिंष्टाद् बृहस्पतेराधिंपत्त्यऽओजों मे दाविश्श्वांभ्यो मानाष्ट्राभ्यंस्पाहि मनोरश्श्वांसि॥37.12॥ अनेन पुण्याहवाचनेन कर्माङ्गदेवताः श्रीआदित्यादिनवग्रहाः प्रीयन्ताम् ।। इति पुण्याहवाचनप्रयोगः।**

मातृकापूजनप्रयोगः- तत्रादौ वैश्वदेवं कुर्यात्। तदकरणे सङ्कल्पः- इदं वैश्वदेवहवनीय- द्रव्यं सदक्षिणाकमत्रावसरे वैश्वदेवाकरणजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं करणजनितफलमाप्त्यर्थम् अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय विष्णुरूपाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। अनेन वैश्वदेवकरणजनितफलसिद्धिरस्तु। ततो गोधूमादिधान्यपूरिते हरिद्रादिरञ्जिते मृन्मये अविघ्नाख्यकलशे मोदादिषड्विनायकानां प्रतिमाः कुङ्कुमादिना लिखित्वा आवाहयेत्- ॐमोदाय नमः मोदम् आवाहयामि। ॐप्रमोदाय नमः प्रमोदम् आवाहयामि। ॐ सुमुखाय नमः सुमुखम् आवाहयामि। ॐदुर्मुखाय नमः दुर्मुखम् आवाहयामि। ॐअविघ्नाय नमः अविघ्नम् आवाहयामि। ॐविघ्नकर्त्रे नमः विघ्नकर्तारम् आवाहयामि। **प्रतिष्ठापनम् ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्यंस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्टँ य्यज्ञ ँ समिमन्दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥2.13॥ ॐ भूर्भुवः स्वः मोदादिषड्विनायकाः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत। ॐमोदादिषत्त्रीनायकेभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य अनया पूजया मोदादिषड्विनायकाः प्रीयन्ताम्। इत्यविघ्नपूजनम्।**

मण्डपमातृकास्थापनम्- निश्चितकोणे गर्तं खनेत्। गर्तसमीपे सभार्यो यजमानःपूर्वाभिमुख उपविश्य गोधूमनिर्मित गणपतिप्रतिमायां पूर्ववत् गणपतिं षोडशोपचारैः सम्पूजयेत्। ततो यजमानश्चतुर्षु कोणेषु मध्ये च गर्तं कुर्यात्। आचार्येण च दुर्वाशम्याम्रादिप्रशस्तवृक्षपत्राणां रक्तसूत्रेण पश्च वेष्टनानि कार्याणि। एषां मण्डपमातृसंज्ञा। ताश्च मण्डपमातृः मण्डपे स्थापयेत्। तासां मध्ये एकां मदनफलेन युक्तां कुर्यात्। ततस्तासां तैलहरिद्राकुङ्कुमादिसुगन्धद्रव्येणोद्वर्तनम्। ततो यजमानो गर्तेषु अद्भिरासेचनं कुर्यात् दध्ना च। ततस्ता आग्नेयादिचतुर्षु मण्डपकोणस्तम्भेषु क्रमेण चतस्रो मध्ये चेका एवं पश्च कृत्वा ततः स्थिरोभवेतिस्थिरीकरणम्॥ **ॐ स्थिरो भव वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाजऽज्यर्वन्। पृथुर्भवसुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः।।11.44।। तत्र शाखास्तम्, अग्निकोणे-ॐनन्दिन्यै नमः नन्दिनीमावाहयामि स्थापयामि॥1॥ नैर्ऋत्यकोणे नलिन्यै नमः नलिनीमावाहयामि॥2॥ वायव्यकोणे ॐ मैत्रायै नमः मैत्रामावाहयामि॥3॥ ईशानकोणे-ॐउगायै न... उमामा... ॥4॥ मध्ये पशुवर्धिन्यै नमः** मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्यंस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्टँ य्यज्ञ ँ समिमन्दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो।।३म्प्रतिष्ठ।।2.13।। **ॐ भूर्भुवः स्वः** नन्दिन्यादिमण्डपमातृभ्यो नमः

इत्यनेन मन्त्रेणावाहनादिषोडशोपचारैस्ताः पूजयेत्। अनया पूजया नन्दिन्यादिमण्डपमातरः प्रीयन्तां नमम।

गौर्यादिमातृणां पूजनम्- अग्निकोणे पीठोपरि रक्तवस्त्रं प्रसार्य तदुपरि गोधूमाक्षतपुञ्जेषु पूगीफलेषु वा सगणाधिपगौर्यादिचतुर्दशमातृणां दक्षिणोपक्रमाणाम् उदगपवर्गाणां प्रत्ययुपक्रमाणां प्रागपवर्गाणां वा स्थापनम्। ॐगणानान्त्वा.॥23.19 ॥ ॐगणेशाय नमः गणेशम् आवाहयामि स्थापयामि। भो गणपते इहागच्छ इह तिष्ठ॥1॥ ॐ आयङ्गौ पृश्निरक्रमीदसदन्नमातरम्पुरः॥ पितरञ्चप्रयन्त्स्वः॥1॥ ॐ भूर्भुवःस्वः गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि ।भो गौरि इहा गच्छ इह तिष्ठ ॥1॥ ॐ हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्य्यश्च। आरोहतं वरुण मित्रः गर्त्तन्त तश्चक्षाथामदितिन्दितिश्च मित्रत्रोऽसि वरुणोऽसि॥10.16 ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः पद्मायै नमः पद्मामावाहयामि स्थापयामि। भो पद्म इहागच्छ इह तिष्ठ।2॥ ॐ कदाचन स्तरीरसिनेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानन्देवस्य पृच्यतऽआदित्त्येब्भ्यस्त्वा॥8.2॥ ॐभूर्भुवःस्वः शच्यै नमः शचीमावाहयामि स्थापयामि। भो शचि इहागच्छ इह तिष्ठ।।3।। ॐ मेधाम्मेव्वरुणोददातु- मेधामग्नि प्रजापतिKH ॥ मेधामिन्द्रश्चायुश्च द्रश्चव्वायुश्चमेधान्धातादद्दा तु मेस्वाहा ॥ 3॥ ॐ भूर्भुवःस्वः मेधायै नमः मेधामावाहयामि स्थापयामि। भो मेधे इहागच्छ इह तिष्ठ ॥ 4 ॥ ॐ उपयामगृहीतोऽसि सावित्त्रोसिचनोधाश्चनोधाऽअसिचनोमयिधेहि। जिन्व यज्ञञ्जिन्व यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्त्वा सवित्त्रे ॥8.7 ॥ ॐभूर्भुवःस्वः सावित्र्यै नमः सावित्रीम् आवाहयामि स्थापयामि। भो सावित्रि इहागच्छ इह तिष्ठ ॥5।। ॐ व्विज्यन्धनुः कपर्द्दिनो व्विशल्ल्यो बाणवाँ2।।ऽउत। अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिKh॥16.10॥ ॐभूर्भुवःस्वः विजयायै नमः विजयाम् आवाहयामि स्थापयामि। भो विजये इहागच्छ इह तिष्ठ ।।6॥ ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्त्तन्वा शन्तमयागिरिशन्ताभिचाकशीहि।।16.2।। ॐभूर्भुवःस्वः जयायै नमः जयाम् आवाहयामि स्थापयामि। भो जये इहागच्छ इह तिष्ठ॥7॥ ॐ देवानाम्भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम्।देवानाꣳ सक्ख्यमुपसेदिमा वयन्देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥25.15॥

ॐ भूर्भुवः स्वः देवसेनायै नमः देवसेनाम् आवाहयामि स्थापयामि। भो देवसेने इहागच्छ इह तिष्ठ॥8॥ ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेब्भ्यःस्वधायिभ्यःस्वधा नमः प्रपितामहेब्भ्यः स्वधायिब्भ्यः स्वधा नमः। अक्ष्न्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त

पि॒तरः॑ पितरः॑ शुन्धध्वम्॥19.36॥ ॐभूर्भुवःस्वः स्वधायै भो स्वधायै नमः स्वधाम् आवाहयामि स्थापयामि। भो स्वधे इहागच्छ इह तिष्ठ॥9॥ ॐ स्वाहा॑ य॒ज्ञं मन॑सc स्वाहा॑रोर॒न्तरि॑क्षा॒त्स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ꣳ स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒स्वाहा॑ ।।6.4।। ॐभूर्भुवःस्वः स्वहायै नमः स्वाहाम् आवाहयामि स्थापयामि। भो स्वाहे इहागच्छ इह तिष्ठ।।10।।

ॐ धृष्टि॑र॒स्यपा॑ऽग्नेऽअ॒ग्निमा॒मादं॑ज॒हि॒ निष्क्र॑व्याद॑ꣳ से॒धा दे॑व॒यजं॑ वह। ध्रु॒वम॑सि पृथि॒वीन्द॑ꣳह ब्रह्म॒वनि॑ त्वाक्षत्र॒वनि॑ सजात॒वन्युप॑दधामि॒ भ्रातृ॑व्यस्यव॒धाय॑॥1.17॥ ॐभूर्भुवःस्वः धृत्यै नमः धृतिमावाहयापि स्थापयामि। भो धृते इहागच्छ इह तिष्ठ ॥11॥ ॐ त्वष्टा॑ तु॒रीपो॒ऽअद्भु॑तऽइन्द्रा॒ग्नी पु॑ष्टि॒वर्ध॑ना।द्विप॑दा॒च्छन्द॑ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षागौर्न्नव्यो॑दधुः॑॥21.20॥ ॐ भूर्भुवः स्वः पुष्ट्यै नमः पुष्टिमावाहयामि स्थापयामि। भो पुष्टे इहागच्छ इह तिष्ठ।।12॥ ॐ बृहस्पते.। ॐभूर्भुवः स्वः तुष्ट्यै नमः तुष्टिमावाहयामि स्थापयामि। भो तुष्टे इहागच्छ इह तिष्ठ ॥13॥ ॐ अम्बे॒ऽअम्बि॒केऽम्बा॑लिके॒ न मा॑ नयति॒ कश्च॑न। ससस्त्यश्व॒कKh सुभ॑द्रिकाङ्काम्पीलवा॒सिनी॑म्॥23.18॥ ॐभूर्भुवः स्वः आत्मनः कुलदेवतायै नमः आत्मनः कुलदेवतामावाहयामि स्थापयामि। भो आत्मनः कुलदेवते इहागच्छ इह तिष्ठ॥14॥ ॐ मनो॑ जू॒तिर्ज्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्त्वरि॑ष्टं॒ य्य॒ज्ञꣳ समि॒मन्द॑धातु। विश्वे॑ दे॒वास॑ऽइ॒ह मा॑दयन्ता॒मो।।ꣳम्प्रति॑ष्ठ।।2.13।। ॐ भूर्भुवः स्वः सगणाधिपगौर्यादिमातरः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवत ।। ॐ भूर्भुवः स्वः सगणाधिपगौर्यादिमातृभ्यो नमः इत्यनेन षोडशोपचारैः सम्पूजयेत्।

अथ श्र्यादिसप्तवसोर्द्धारापूजनम्- पात्रस्थेन विलीनेन सगुडेन घृतेन मातृणां संनिहितकुड्यलग्नाः दक्षिणायुदपवर्गाः पश्चिमादिप्रागपवर्गाः नातिनीचा न चोच्छ्रिताः सप्तवसोर्द्धाराः कर्तव्याः। ॐ वसो॑ः प॒वित्र॑मसि श॒तधा॑रं॒ वसो॑ः प॒वित्र॑ꣳमसि स॒हस्र॑धारम्। दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता पु॑नातु॒ वसो॑ः प॒वित्रे॑ण श॒तधा॑रेण सु॒प्वा काम॑धुक्षः॑॥1.3॥ इत्यनेन सप्तधाराः कृत्वा ततः शिष्टाचारात् उर्ध्वभागे गुडेनैकीकरणम् ॐकामधुक्ष। श्रीपूर्वसप्तमातृश्च घृतमातृस्तथैव च। गुडेन मेलायष्यामि ताः सर्वार्थप्रसाधिकाः॥ इत्यनेनैकीकृत्य कुङ्कुमादिना बिन्दुकरणेनालङ्कृत्य प्रतिधारायामेकैकदेवतामावाहयेत्।ॐमर्नस.।। ॐ भूर्भुवःस्वः श्रियै नमः श्रियम् आवाह्यामि॥1॥

ॐश्रीश्चते0॥ ॐलक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीम् आवाहयामि ॥ 2 ।। ॐ इहरति.. ॥ ॐ भूर्भुवःस्वः धृत्यै नमः धृतिम् आवाहयामि॥3॥ ॐमेधाम्ये0 ॥ॐमेधायै नमः मेथाम् आवाहयामि ॥4॥ ॐदेवीजोष्ट्री0।। ॐ भूर्भुवः स्वः पुष्टयै नमः पुष्टिमावाहयामि॥5॥ ॐव्व्रतेनदीक्षा0।। ॐ भूर्भुवःस्वः श्रद्धायै नमः श्रद्धाम् आवाह्यामि॥6॥ ॐदेवीस्तिस्त्रस्ति0॥ ॐ भूर्भुवःस्वः सरस्वत्यै नमः सरस्वतीम् आवाहयामि।।7॥ ॐ मनो॑ जू॒तिर्ज्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्वरि॑ष्टं॒ य्य॒ज्ञꣳ समि॒मन्द॑धातु। विश्वे॑ दे॒वास॑ऽइ॒ह मा॑दयन्ता॒मो।।ꣳम्प्रति॑ष्ठ।।2.13।॥ ॐ भूर्भुवःस्वः श्र्यादिसप्तवसोर्द्धाराः सुप्रतिष्ठिताः वरदा भवत। ॐ भूर्भुवःस्वः श्रयादिसप्तवसोर्द्धारादेवताभ्यो नमः इत्यनेन पोडशोपचारैः पूजयेत्।

प्रार्थना-यदङ्गन्त्वेन भो देव्यः पूजिता विधिमार्गतः। कुर्वन्तु कार्यमखिलं निर्विघ्नेन क्रतूद्भवम्। इति

मातृकापूजनप्रयोगः।

आयुष्यमन्त्रजपः- ॐ आ॒युष्य॑ं व्वर्च्च॒स्यꣳ रा॒यस्पोष॒मौद्भिदम्। इ॒दꣳ हिर॑ण्यं॒ व्वर्च्च॑स्व॒ज्जैत्रा॒याविशतादु॒ माम्॥34.50॥ न तद्रक्षा॑ꣳसि॒ न पि॑शा॒चास्त॑रन्ति दे॒वाना॒मोज॑ः प्रथम॒जꣳ ह्येतत्। योबि॒भर्ति॑ दाक्षायण॒ꣳहिर॑ण्य॒ꣳ स दे॒वेषु॑ कृणुते दी॒र्घमायु॒ः स म॑नु॒ष्येषु कृणुते दी॒र्घमायु॑ः।।34.51।। यदाब॑ध्नन् दाक्षाय॒णाहिर॑ण्यंश॒तानी॑कायसुमन॒स्यमा॑नाः।
तन्म॒ऽआब॑ध्नामि श॒तशा॑रदा॒यायु॑ष्म्माञ्ज॒रद॑ष्टिर्यथास॑म् ॥34.52॥

3.3 नान्दीश्राद्धान्तपूजन-

साङ्कल्पिक विधि से नान्दीश्राद्ध प्रयोग-

अथ यज्ञोपवीती प्राङ्मुखो दक्षिणं जानु पातयित्वा पात्रे उदङ्मुखान् प्राक्संस्थान् स्वयम् उदङ्मुखश्चेत् प्राङमुखान् उदक्संस्थान् वैश्वदेवस्थाने द्वौ सपत्नीकपितृपार्वणस्थाने द्वौ सपत्नीकमातामहपार्वणस्थाने द्वौ च एवं षट् कुशबटून् दूर्वाकाण्डानि वा संस्थाप्य क्षणदानं कुर्यात्। यवान्गृहीत्वा ॐ सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां नान्दीमुखानाम् अद्य कर्तव्यप्रधान सङ्कल्पोक्तकर्माङ्गसाङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धे भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्। इति यवान्निक्षिप्य। ॐ तथा।। प्राप्नुतां भवन्तौ। प्राप्नवाव। यवान् गृहीत्वा गोत्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानां सपत्नीकानाम् अद्य कर्तव्यप्रधानसंकल्पोक्तकर्माङ्गसाङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धे भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्। इति यवान्निक्षिप्य। ॐ तथा। प्राप्नुतां भवन्तौ। प्राप्नवाव। यवान्गृहीत्वा द्वितीयगोत्राणां नान्दीमुखानां

मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकानाम् अद्य कर्तव्यप्रधान सङ्कल्पोक्त कर्माङ्गसाङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धे भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्। इति यवान्निक्षिप्य। ॐतथा। प्राप्नुतां भवन्तौ।प्राप्मवाव। पाद्यदानम्-सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः इदं वः पार्थ पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः।

सङ्कल्पः- अद्य पूर्वोच्चारित0 शुभपुण्यतिथौ साङ्कल्पिकविधिना नान्दीश्राद्धं करिष्ये । आसनदानम्- सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः इदं वः आसनम्। गोत्राः नान्दीमुखाः पितृपितामहमपितामहाः सपत्नीकाः इदं वः आसनम्। द्वितीयगोत्राः नान्दीमुखाः मातामहमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः इदं वः आसनम्।

गन्धादिदानम्- सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः इदं वः आसनम्। गोत्राः गन्धाद्यर्चनं यथाविभागं स्वाहा नमः। गोत्राः नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रापतामहाः सपत्नीकाः इदं वो गन्धाद्यर्चनं यथाविभागं स्वाहा नमः ॥ द्वितीयगोत्राः नान्दीमुखाः मातामहप्रमातामहवृद्ध प्रमातामहाः सपत्नीकाः इदं वो गन्धाद्यर्चनं यथा- विभागं स्वाहा नमः।

भोजननिष्क्रयद्रव्यदानम्- सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाःनान्दीमुखाः युग्मब्राह्मणभोजन पर्याप्तामनिष्क्रयी भूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तम् अमृतरूपेण वः स्वाहा नमः। गोत्राः नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहाः सपत्नीकाः युग्मब्राह्मणभोजन पर्याप्तामनिष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तम् अमृतरूपेण वः स्वाहा नमः। द्वितीयगोत्राः नान्दीमुखाः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः युग्मब्राह्मण भोजनपर्याप्तामनिष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तम् अमृतरूपेण वः स्वाहा नमः।

सक्षीरयवमुदकदानम्-सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम्। गोत्राः नान्दीमुखाः पितृपितामहमपितामहाः सपत्नीकाः प्रीयन्ताम्। द्वितीयगौत्राः नान्दीमुखाः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः प्रीयन्ताम्। आशीर्ग्रहणम्-अघोराः पितरः सन्तु। सन्त्वघोराः पितरः। गोत्रं नो वर्धताम्। वर्धतां वो गोत्रम्। दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम्। अभिवर्द्धन्तां वा दातारः। वेदाश्च नोऽभिवर्द्धन्ताम्। अभिवर्द्धन्तां वोवेदाः। सन्ततिर्नोऽभिवर्द्धताम्। अभिवर्द्धतां वः सन्ततिः। श्रद्धा च नो मा व्यगमत्। माव्यगमद्वः श्रद्धा। बहुदेयं च नोऽस्तु। अस्तु वो बहुदेयम्। अन्नं च नो बहु भवेत्। भवतु वो बह्वन्नम्। अतिथींश्च लभेयहि। अतिथींश्च लभध्वम्। याचितारश्च नः सन्तु। सन्तु वो याचितारः। एता आशिष सत्याः सन्तु। सन्त्वेताः सत्या आशिषः।

दक्षिणादानम्- सत्यवसुसंज्ञकेभ्योविश्वेभ्योदेवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्यफलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयीभूतां दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे॥ गोत्रेभ्यःनान्दीमुखेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलमतिष्ठा सिद्धयर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयीभूतां दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे। द्वितीयगोत्रेभ्यः नान्दीमुखेभ्यः मातामहभमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलक्रयवमूलनिष्क्रयीभूतां दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे। नान्दीश्राद्धं सम्पन्नम्। सुसम्पन्नम्।

विसर्जनम् ॐवाजिनोनोधनेषुविप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः। अस्यमद्धं÷ पिबतमादयध्वन्तृप्ता यातपथिभिर्देवयानैः॥9.18॥

अनुव्रजनम्- ॐ आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्म्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे। आ मा गन्ताम्पितरा मातराचामासोमोऽअमृतत्त्वेनगम्म्यात्।।9.19॥ हस्ते जलमादाय- मयाऽऽचरितेऽऽस्मिन्साङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धे न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनाच्छ्रीनान्दीमुखप्रसादाच्च सर्वः परिपूर्णोऽस्तु। अस्तु परिपूर्णः। अनेन साङ्कनल्पिकाविधिना नान्दीश्राद्धेन नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्।। इत्ति साङ्कल्पिकविधिना नान्दीश्राद्धप्रयोगः॥

3.4 ब्राह्मण भोजन (अन्नदान,धान्यदान) श्रद्धा के अनुसार करें।

इकाईः4, अग्निस्थापन कर्माङ्ग हवन

4.1. पञ्चभूसंस्कार

ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ आसादयादिह॥

वेदों में अग्नी को **हव्यवाहन्** कहा गया हैं जो देवताओं के लिए हविर्वहन करता हैं । जिस देवता के उद्देश्य से हम अग्नि में आहुती प्रदान करते हैं उसे तत्तत् देवता के समीप अग्नि के द्वारा पहुंचाया जाता हैं ।अग्नि अत्यन्त शुचिव्रत होता हैं इसलिए अत्यन्त शुचिता का पालन कर के शुद्ध स्थान में अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। पञ्चभूसंस्कार उस क्षेत्र का संस्कार है जहां हमे अग्नि को स्थापित करना हैं।

पञ्चभूसंस्कार सामग्री – कुशा, गोमय, यज्ञपात्र, जलपात्र, गोमयखण्ड(कण्डे), अन्य पूजन सामग्री॥

4.2 अग्निस्थापन विधि- – अग्नि स्थापना के पूर्व करिष्यमाण यज्ञ में आहुति सङ्ख्या को देखते हुवे कुण्ड/स्थण्डिल का निर्माण करें। कुण्ड/स्थण्डिल निर्माण के पश्चात् अभीष्ट सामग्री साथ लेकर पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन, प्राणायाम पूर्वक सङ्कल्प करें-

अद्यपूर्वोच्चारित ..... अस्मिन् कर्मणि पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापनं करिष्ये॥

कुशैः त्रिप्रदक्षिणं परिसमुह्य परिसमुह्य परिसमुह्य।(कुशमुष्टि लेकर यज्ञकुण्ड/स्थण्डिल में जिस प्रकार झाड़ू करते है वैसे परिसमूहन् करें)

तान् कुशान् ईशान्यां परित्यज्य ।(उस कुशमुष्टि को ईशान्य दिक् में त्याग करें)

गोमयोदकेन त्रिरुपलिप्य उपलिप्य उपलिप्य ।(गोमय मिश्रित जल से कुण्ड/स्थण्डिल मे लेपन करें)

स्फेन स्रुवमूलेन वा प्रागग्रा तिस्रो रेखा उल्लिख्य उल्लिख्य उल्लिख्य।(स्फ्य (यज्ञपात्र विशेष) से कुण्ड/स्थण्डिल में पूर्वाग्र तीन रेखा उल्लेखित करें)

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां रेखाभ्यः प्राक् पांसून् उधृत्य उधृत्य उधृत्य ।(की हुई रेखाओं मे से कुछ अंश दक्षिण हाथ के अङ्गुष्ठ व अनामिका से ले कर वामहस्त में रखकर कुण्ड के बाहर विसर्जित करें)

सुवासिन्याः कांस्यपात्रे आनीतमग्निं कुण्डस्यां आग्नेय्यां दिशि निधाय ।(कांस्यपात्र में सुवासिनियों द्वारा आनीत अग्नि कुण्ड/स्थण्डिल के अग्निकोण में स्थापित करें)

हुं फट् इति मन्त्रेण क्रव्यादांशं नैर्ऋत्यां दिशि क्षिपेत् ।(हुं फट् मन्त्र से आनीत अग्नि से एक छोटासा अंश लेकर नैर्ऋत्य दिशा में निक्षेप करें) **उदकोपस्पर्शः**।(जलस्पर्श करें)

अग्निपात्रमादाय कुण्डोपरि त्रिर्भ्रामयित्वा योनि मार्गेण नीत्वा आत्माभिमुखमग्निं प्रतिष्ठाप्य । (अग्निपात्र लेकर कुण्ड/स्थण्डिल पर तीन बार घुमाकर कुण्ड के योनिमार्ग से कुण्ड के अन्दर अपनी ओर आत्माभिमुख करके अग्निस्थापन करें)

ॐअग्निं दूतं पुरोदधे.....॥

अग्निमुखं कृत्वा ध्यायेत् – ॐ चत्वारि श्रृङ्गा .....॥

ॐ सप्तहस्त श्चतुश्रृङ्गः सपतहस्तो द्विशीर्षकः। त्रिपाद्प्रसन्न वदनः सुखासीन शुचिस्मितः॥ स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधा तथा। बिभ्रद्दक्षिण हस्तैऽस्तु शक्तिमन्नं स्रुवं स्रुचम्॥ तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रं च धारयन्। आत्मभिमुखमासीन एवं रूपो हुताशनः॥अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। हिरण्यवर्ण ममलं समिद्धं विश्वतो मुखम्॥

भो अग्ने शाण्डिल्य गोत्र शाण्डिल्यासित देवलेति त्रिप्रवरान्वित भूमिर्माता वरुणः पिता मेषध्वज प्राङ्मुखो मम सम्मुखो भव॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अमुक..... नाम्ने वैश्वानराय नमः सकलोपचारार्थे गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि॥

कुण्ड/स्थण्डिल के आठों कोनों में अग्नि पूजन करें ।

ॐ अग्नये नमः । ॐ हुतवाहनाय नमः। ॐ हुताशने नमः। ॐ कृत्स्नवर्त्मने नमः। ॐ देवमुखाय नमः। ॐ सप्तजिह्वाय नमः। ॐ वैश्वानराय नमः। ॐ जातवेदसे नमः। मध्ये **श्री यज्ञपुरुषाय नमः॥** इत्यग्निं सम्पूज्य । पञ्चप्राणाहुतिः जुहुयात्।

ॐ प्राणाय स्वाहा।ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा॥

॥इति पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन॥

4.3. कुशकण्डिका (स्थालीपाक) प्रयोग एवं पात्रादिसादन -

पञ्चभूसंस्कार पूर्वक अग्निस्थापन करने के पश्चात् नवग्रहादि अन्य पीठस्थ देवता तथा मुख्य देवता स्थापन पूजन कर स्थापित देवताओं के हवन कर्म से पूर्व कुशकण्डिका(स्थालीपाक) नामक अग्निसंस्कार किया जाता हैं।जिसमें सर्वप्रथम जिन देवताओं के प्रीत्यर्थ हम आहुति जिन पदार्थों से प्रदान करेंगे उन-उन पदार्थों का उच्चारण तथा देवताओं का अभिध्यान किया जाता हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि हम यज्ञकर्म

में किस देवता को आहुति प्रदान करेंगे॥ (देवताभिध्यानम् प्रत्येक कर्मों मे कर्माङ्गदेवताओं के अनुसार भिन्न - भिन्न होता हैं।)

कुशकण्डिका की पूर्व तैयारी- कुशपवित्रक, यज्ञपात्र (प्रणिता,प्रोक्षणी,स्रुवा,स्रुक,स्फ्य) आज्यस्थाली,चरुस्थाली, पूर्णपात्र, कुशमुष्टि, समिधा, दो , तीन , पांच, सात इस प्रकार से कुशाओं को ले कर अग्रभाग ग्रन्थी करें ।

वैकल्पिकावधारणम्- तत्र पूर्वेण ब्रह्मणो गमनम्। उत्तरेण पात्रासादनम्। द्वे पवित्रे। आज्यस्थाली। चरुस्थाली। पालाशः समिधः। प्रांचावाघारौ। समिद्धतमे। आज्यभागौ। पूर्णपात्रम्। वरोदक्षिणा। एतान् वैकल्पिकपदार्थानहं करिष्ये॥

देवताभिध्यानम् – प्रजापतिं - इन्द्रं – अग्निं – सोमं – एताः आज्येन । अग्निं – सूर्यं – अग्नीवरुणौ – अग्नीवरुणौ – विश्वान्देवान् मरुतः स्वर्कान् – वरुणं – आदित्यं - प्रजापतिं – अग्निं शेषेण स्विष्टकृतम् एताः अङ्गप्रधान देवताः आज्येनाहं यक्ष्ये ॥ (देवताभिध्यान में कर्मानुसार देवताओं के हविर्द्रव्या भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।)

कुशकण्डिका - अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य। (अग्नी/कुण्ड के दक्षिण दिशा में ब्रह्मासन रखे)। **उदङ्मुखो यजमानः स्वस्य समीपे प्राङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेश्य।** (यजमान् उत्तर की ओर मुख कर ब्रह्मा को पूर्वाभिमुख बिठाए)। **गन्धाधिभिरलङ्कृत्य ।** (ब्रह्मा को गन्धादि से पूजन करें)। **ब्रह्मा उत्तरेण गत्वा अग्नेर्दक्षिणतः स्वासने उपविशेत् ।स्वासनात् किञ्चित् दर्भं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्।उदकोपस्पर्शः।** (ब्रह्मा उत्तरदिशा से जा कर अग्नि के दक्षिणदिशा में स्वयं के आसन पर बैठ॥ अपने आसन से कुछ दर्भ निकालकर नैर्ऋत्य में फेकें। जल स्पर्श करें)। **प्रणीतापात्रं वामहस्ते धृत्वा दक्षिणहस्तेन उदकेनापूर्य ।**(प्रणीतापात्र बाए हाथ में ले कर दहिने हाथ से जल भरें)।**यजमानः - भो ब्रह्मन् अपः प्रणेश्यामि। ब्रह्मा – ॐ प्रणय॥ प्रणीतापात्रं अग्नेरुत्तरतः कुशेषु निदध्यात् । प्रथमस्थाने निधाय। द्वितीयस्थाने निदधाति।** (प्रणीता पात्र अग्नि के उत्तर में कुश के रखे हुवें परिकल्पित दो स्थानों मे से प्रथमस्थान में रखकर पुनः द्वितीयस्थान पर रखें)। **पूर्वाग्रदर्भैः ईशानमारभ्य ईशान पर्यंतम् अग्नेः परिस्तरणम् कुर्यात् । पुरस्तात् उदग्ग्रैः। दक्षिणतः प्रागग्रैः। पश्चिमतः उदग्ग्रैः। उत्तरतः प्रागग्रैः। हस्तस्य इतरथावृत्तिः।** (दर्भ/कुशों को पूर्वाग्र कर के ईशान से ईशान पर्यन्त अग्नि को परिस्तरण करें ।पूर्व में उत्तराग्र। दक्षिण में पूर्वाग्र।

पश्चिम में उत्तराग्र। उत्तर में पूर्वाग्र। इसप्रकार कुश रखकर हाथ को विपरीत दिशा में घुमावें)। **अग्नेरुत्तरतः पात्रासादनम्** । (अग्नि के उत्तर में कुश/दर्भ आसादन पूर्वक पात्रासादन करें)। **पवित्रच्छेदनास्त्रयो दर्भः**। (पवित्र च्छेदनार्थ तीन दर्भ/कुश)। **पवित्रे द्वे**।(अग्र बांधे हुवे दो पवित्र)। **प्रोक्षणी पात्रम्**। (प्रोक्षणी पात्र)। **आज्यस्थाली** (आज्यस्थाली)। **चरुस्थाली** । (चरुथाली)। **संमार्जन कुशाःपञ्च**। (संमार्जनार्थ अग्र बांधे हुवे पांच कुश) । **उपयमनकुशाः सप्त**। (अग्र बांधे हुवे उपयमन नामक सात कुश)। **तिस्रःसमिधः** । (तीन समिधा)। **स्रुवः।स्रुक्** । **आज्यम्** ।**तंडुलाः**।**पूर्णपात्रम्** । (स्रुवा,स्रुक,आज्य,तंडुल,पूर्णपात्र इत्यादि सामग्री आसादन करें)। **पवित्रे कृत्वा**। **द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय**। **द्विमूलेन द्वौ कुशौ प्रदक्षिणी कृत्य** । **सर्वाण्युगपद्धृत्वा**। **अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां छित्वा तान्युत्तरतः क्षिपेत्**।**द्वेग्राह्यः**। (पवित्रकरण करे – पात्रासादन में स्थापित, अग्रभाग बन्धित दो एवं तीन कुशों को कर्ता अपने हाथ में ले कर प्रागग्र दो पवित्रों के उपर उत्तराग्र तीन पवित्र रखकर दो पवित्रों के मूल से दो पवित्रों के अग्र प्रादेश भाग को प्रदक्षिणवत् वेष्टन करे। दो पवित्र के मूल, तीन पवित्र के मूल एवं अग्रभाग को एकत्र कर अनामिका एवं अङ्गुष्ठ से दो पवित्र अग्रभाग का छेदन कर दो पवित्र के मूल एवं तीन पवित्र के मूल तथा अग्र को त्याग कर छेदन किये हुवे दो पवित्र के अग्र को ग्रहण करें) । **द्वे पवित्रे प्रोक्षणी पात्रे निधाय** । (दो पवित्रों को प्रोक्षणी पात्र में रखें)। **पात्रान्तरेण प्रणीतोदकमासिच्य**। (अन्य किसि पात्र से प्रणीता पात्रस्थ जल ले कर प्रोक्षणीपात्र मे प्रोक्षण करें) **अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उत्पूय**। (प्रोक्षणी पात्रस्थ पवित्र दोनो हाथों के अङ्गुष्ठ अनामिका के मध्यपर्व में पकडकर प्रोक्षणीपात्रस्थ जल शुद्ध करें) । **सव्ये पाणौ कृत्वा** । **दक्षिणहस्तमुत्तानं कृत्वा मध्यमानामिकाङ्गुल्योः मध्यपर्वाभ्यामपां उद्दिङ्गनम् – उद्दिङ्गनम् – उद्दिङ्गनम्** ॥(प्रोक्षणीपात्र को बाए हाथ मे लेकर दहिना हाथ उल्टा कर मध्यमा,अनामिका के मध्यपर्व से पात्रस्थ जल को तीन बार उपर की ओर छिडकें)। **ताभिस्तासां प्रोक्षणम्** ।(प्रोक्षणी पात्रस्थ पवित्र से प्रणीता पात्रस्थ जल से प्रोक्षणी का प्रोक्षण करें)। **पात्राणि प्रोक्षयेत्** ।(प्रोक्षणी जल से आसादित पात्रों का प्रोक्षण करें)। **आज्यस्थालिं प्रोक्षामि**।**चरुस्थालिं प्रोक्षामि**। **संमार्जन कुशान् प्रोक्षामि**। **उपयमन कुशान् प्रोक्षामि**। **समिधं प्रोक्षामि**। **स्रुवं प्रोक्षामि**।**आज्यं प्रोक्षामि**। **तण्डुलान् प्रोक्षामि**। **पूर्णपात्रं प्रोक्षामि**।**अन्योपकल्प द्रव्यं प्रोक्षामि**।(आज्यस्थालि,चरुस्थालि इत्यादि आसादित संभारों का प्रोक्षण करें)। **असंचरे प्रोक्षणीपात्रं निधाय**। (प्रणीता एवं अग्नि के मध्य असंचर स्थान में प्रोक्षणी का स्थापन करें)।

आज्यस्थाल्यां आज्यं निरूप्य॥ (आज्यस्थाली में आज्य रखें)। **चरुस्थाल्यां तण्डुलानोप्य।लौकिकोदकेन त्रिः प्रक्षाल्य। प्रणीतोदकमासिच्य।** (हवनार्थ चरु/हविष्य बनाने के लिए चरुपात्र मे जल से तीन बार चावल धो कर प्रणीतापात्र के जल से प्रोक्षण करें)। **आज्यं ब्रह्माधिश्रयति।** (आज्य/घी को ब्रह्मा अग्निकुण्ड मे गरम करने के लिए रखें)।**तदुत्तरतः चरुं कर्ताधिश्रयति।**(आज्य के उत्तर में चरु/हविष्य बनाने के लिए यजमान/कर्ता चरुपात्र अग्निकुण्ड मे रखें)।**ज्वलदुल्मुखेन पर्यग्निकरणं कुर्यात् ।इतरथावृत्तिः।** (एक कुश/दर्भ को कुण्डाग्नि से प्रज्वालित कर आज्य एवं चरु के उपर प्रदक्षिणवत् भ्रामण करें। पश्चात् हाथ को विपरीत घुमावें)। **अर्धश्रिते चरौ स्रुवं प्रतप्य । संमार्जन कुशैः संमार्ज्य। अग्रैः अग्रादारभ्य मूल पर्यन्तम् । मूलैः मूलादारभ्य अग्र पर्यन्तम् । विपर्यस्य बहिः मूलैः अभ्युक्ष्य । पुनः प्रतप्य । अग्नेः पश्चात् देशे निदध्यात्।** (अर्धपक्व चरु पर स्रुव को प्रतपन् /गरम करे । संमार्जन कुशा से प्रणीतोदक से प्रोक्षण करे। वह संमार्जन कुशा के अग्र से स्रुवा के सामने अग्रभाग से मूल पर्यन्त तथा संमार्जन कुशा के मूल से स्रुवा के पृष्ठभाग में मूल से अग्र पर्यन्त प्रोक्षित करें । पुनः प्रतपन् करे। अग्नि के पश्चिम में अपने दहिने भाग में रखें ।) **संमार्जन कुशानग्नौ प्रक्षेपः।** (संमार्जन कुश की ग्रन्थी निकालकर कुशा अग्नि में विसर्जन करें)। **आज्यमुद्वास्य चरोः पूर्वेनानीय स्रुवोत्तरत आसादयेत्।**(कुण्डस्थित आज्य निकालकर आसादित चरु के पूर्वदिशा से ले कर अग्नि के पश्चिम में स्रुवा के उत्तर में रखें)। **चरुं आनीय आज्यस्य उत्तरत आसादयेत्।** (कुण्ड से चरुपात्र निकालकर आज्य के उत्तर मे रखें ।) **पवित्राभ्यां आज्यमुत्पूय ।अवेक्ष्य। अपद्रव्य निरसनं ।प्रोक्षणीश्च पूर्ववत्।** (प्रोक्षणीस्थ पवित्र से आज्यपात्र पवित्रित करें। आज्य देखे।आज्यपात्र में कुछ अपशिष्ट हो तो उसे निकाले। प्रोक्षणी मे पूर्ववत् उत्पवन/पवित्रकरण करें।) **उपयमनकुशानादाय। तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय ।** (उपयमन कुश/ अग्रभाग बन्धित सात कुशों की मुष्टि बाए हाथ में ले अपने स्थान में खडे हो कर दहिने हाथ से तीन समिधा अग्नि में समर्पित करें)। **प्रोक्षणी जलेन सपवित्र हस्तेन ईशानमारभ्य ईशान पर्यन्तं अग्नेः पर्युक्षणं कुर्यात् ।इतरथावृत्तिः।** (दहने हाथ में पवित्र रखकर प्रोक्षणीजल से अग्नि के ईशान से आरम्भ कर ईशान पर्यन्त प्रदक्षिणवत् जलधारा करें। पश्चात् हाथ को विपरीत दिशा में घुमावें।) **पवित्रे प्रणीतासु निधाय।**(पवित्र को प्रणीतापात्र मे रखें) **प्रोक्षणीपात्रं वायवे संस्रव प्रक्षेपार्थं स्थापयेत् ।** (संस्रव प्रक्षेपार्थ प्रोक्षणीपात्र वायव्य कोण में रखें) । **अग्निं गन्धादिभिरलङ्कृत्य ।**(गन्धाक्षत पुष्प से अग्नि पूजन करें)। **हृदि सव्यहस्तं निधाय ।** (यजनकर्ता अपने बाएं हाथ को हृदय पर रखे)। **ब्रह्मणा कुशैरन्वारब्धः। वाग्यतः। स्रुवेन जुहुयात्।** (ब्रह्मा के द्वारा

यजनकर्ता को कुश/दर्भ के द्वारा स्पर्श कराकर । मौन होकर । स्रुवा से यजन करें।) मन्त्रान्त स्वाहा शब्द में आहुति दे तथा शेष भाग प्रोक्षणीपात्र में त्याग करें । **अग्नेरुत्तरभागे मनसा - ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम॥ अग्नेर्दक्षिणभागे – ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय न मम॥ ॐ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम॥ ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम॥**

द्रव्यत्याग सङ्कल्पः- (हस्ते जलमादाय) **मया संपादितानि हवनीय द्रव्यानि या या यक्ष्यमान् देवताः ताभ्यः ताभ्यः मया परित्यक्तानि न मम॥ यथा दैवतमस्तु॥**

वराहुतिः – ॐ गणानान्त्वा.....॥

कुशकण्डिका मूलपाठः - अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य। उदङ्मुखो यजमानः स्वस्यसमीपे प्राङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेश्य। गन्धाधिभिरलङ्कृत्य । ब्रह्मा उत्तरेण गत्वा अग्नेर्दक्षिणतः स्वासने उपविशेत् ।स्वासनात् किञ्चित् दर्भं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्।उदकोपस्पर्शः। प्रणीतापात्रं वामहस्ते धृत्वा दक्षिणहस्तेन उदकेनापूर्य । ।यजमानः - भो ब्रह्मन् अपः प्रणेश्यामि। ब्रह्मा – ॐ प्रणय॥ प्रणीतापात्रं अग्नेरुत्तरतः कुशेषु निदध्यात् । प्रथमस्थाने निधाय। द्वितीयस्थाने निदधाति। पूर्वाग्रदर्भैः ईशानमारभ्य ईशान पर्यंतम् अग्नेः परिस्तरणम् कुर्यात् । पुरस्तात् उदगग्रैः। दक्षिणतः प्रागग्रैः। पश्चिमतः उदगग्रैः। उत्तरतः प्रागग्रैः। हस्तस्य इतरथावृत्तिः। अग्नेरुत्तरतः पात्रासादनम् । पवित्रच्छेदनास्त्रयो दर्भः। प्रोक्षणी पात्रम्। आज्यस्थाली। चरुस्थाली। संमार्जन कुशाःपञ्च। उपयमनकुशाः सप्त। तिस्रःसमिधः । स्रुवः।स्रुक् । आज्यम्। तंडुलाः।पूर्णपात्रम्। पवित्रे कृत्वा। द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय। द्विमूलेन द्वौ कुशौ प्रदक्षिणी कृत्य । सर्वाण्युगपद्धृत्वा। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां छित्वा तान्युत्तरतः क्षिपेत्।द्वेग्राह्यः। द्वे पवित्रे प्रोक्षणी पात्रे निधाय । पात्रान्तरेण प्रणीतोदकमासिच्य। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उत्पूय। सव्ये पाणौ कृत्वा । दक्षिणहस्तमुत्तानं कृत्वा मध्यमानामिकाङ्गुल्योः मध्यपर्वाभ्यामपां उद्दिङ्गनम् – उद्दिङ्गनम् – उद्दिङ्गनम् ॥ ताभिस्तासां प्रोक्षणम् । पात्राणि प्रोक्षयेत् ।आज्यस्थालिं प्रोक्षामि।चरुस्थालिं प्रोक्षामि। संमार्जन कुशान् प्रोक्षामि। उपयमन कुशान् प्रोक्षामि। समिधं प्रोक्षामि। स्रुवं प्रोक्षामि।आज्यं प्रोक्षामि। तंडुलान् प्रोक्षामि। पूर्णपात्रं प्रोक्षामि।अन्योपकल्प द्रव्यं प्रोक्षामि। असंचरे प्रोक्षणीपात्रं निधाय । आज्यस्थाल्यां आज्यं निरूप्य॥ चरुस्थाल्यां तण्डुलानोप्य। लौकिकोदकेन त्रिः प्रक्षाल्य। प्रणीतोदकमासिच्य। आज्यं ब्रह्माधिश्रयति। तदुत्तरतः चरुं कर्ताधिश्रयति। ।ज्वलदुल्मुखेन पर्यग्निकरणं कुर्यात् ।इतरथावृत्तिः। अर्धश्रिते चरौ स्रुवं

प्रतप्य । संमार्जन कुशैः संमार्ज्य। अग्रैः अग्रादारभ्य मूल पर्यन्तम् । मूलैः मूलादारभ्य अग्र पर्यन्तम् । विपर्यस्य बहिः मूलैः अभ्युक्ष्य । पुनः प्रतप्य । अग्नेः पश्चात् देशे निदध्यात्। संमार्जन कुशानग्नौ प्रक्षेपः। आज्यमुद्वास्य चरोः पूर्वेनानीय स्रुवोत्तरत आसादयेत्। चरुं आनीय आज्यस्य उत्तरत आसादयेत्। पवित्राभ्यां आज्यमुत्पूय ।अवेक्ष्य । अपद्रव्य निरसनं ।प्रोक्षणीश्च पूर्ववत्। उपयमनकुशानादाय । तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय । प्रोक्षणी जलेन सपवित्र हस्तेन ईशानमारभ्य ईशान पर्यन्तं अग्नेः पर्युक्षणं कुर्यात्। इतरथावृत्तिः। पवित्रे प्रणीतासु निधाय। प्रोक्षणीपात्रं वायवे संस्रव प्रक्षेपार्थं स्थापयेत् । अग्निं गन्धादिभिरलङ्कृत्य । हृदि सव्यहस्तं निधाय । ब्रह्मणा कुशैरन्वारब्धः। वाग्यतः। स्रुवेन जुहुयात्॥

॥ इति कुशकण्डिका प्रयोग ॥

4.4 अन्नप्राशनाङ्ग हवन एवं षड्रसयुक्त अन्नप्राशन -

भार्याशिशुसहितः कृतमङ्गलस्नानः आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ स्मृत्वा "ममास्य कुमारस्य मातृगर्भमलप्राशनशुध्यर्थमन्नाद्यब्रह्मवर्चसेन्द्रियायुर्लक्षणफलसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थं अन्नप्राशनाख्यं कर्माहं करिष्ये। तदङ्गतया विहितं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये"। पूर्ववत्सम्पाद्य । स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं विधाय, तत्र "पूर्वेण ब्रह्मणो गमनम्। अपरेण पात्रासादनम्। द्वे पवित्रे। ताम्रमयी आज्यस्थाली। ताम्रमयी चरुस्थाली।पालश्यः समिधः। प्राञ्चावाघारौ। समिद्धतमें आज्यभागौ। पूर्णपात्रं दक्षिणा। हन्तेति प्राशनम् । एतान्वैकल्पिकपदार्थानहं करिष्ये"। अथ देवताभिध्यानम्। "अत्र प्रजापतिं, इन्द्रं, अग्निं, सोमं, दैवीं वाचं, वाजं, एता आज्येन । प्राणं, अपानं, चक्षुः, श्रोत्रं, एतांश्चरुणा । शेषेणाग्निं स्विष्टकृतं, अग्निं, वायुं, सूर्यं, अग्नीवरुणौ, अग्नीवरुणौ, अग्निं, वरुणं, सवितारं, विष्णुं, विश्वान्देवान्, मरुतः, स्वर्कान्, वरुणं, प्रजापतिं, एताः पुनराज्येन । एता देवता अङ्गप्रधानार्था अस्मिन्नन्नप्राशनाख्ये कर्मण्यहं यक्ष्ये" । ब्रह्मोपवेशनादि - पूर्णपात्रासादनान्ते, मधुरादिसर्वान् रसान् सर्वमन्नं मधु घृतं सुवर्णं च शस्त्राणि शास्त्राणि लेखनीं वस्त्रं रजतं स्वर्ण भाण्डानि चोपकल्पितानि । ततः पवित्रकरणाद्याज्यभागान्ते आज्येनान्वारब्धः । "देवीं व्वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जन्दुहाना घेनुर्वागस्मानुपक्षुष्टुतैतु स्वाहा इदं देव्यै वाचे न मम"। पुनः "देवींवाच० सुष्टुतैतु । व्वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरञ्जजान विश्वा आशा वाजपविर्जयेयं स्वाहा। इदं

देव्यै वाचे वाजाय च न मम" । अथ चरुमभिघार्य स्रुवेणैव "ॐ प्राणेनान्नमशीय स्वाहा । इदं प्राणाय न मम। ॐअपानेन गन्धानशीय स्वाहा । इदमपानाय न मम। ॐचक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे न मम । ॐ श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय न मम।" वरोरुत्तरार्धादग्नेरुत्तरार्द्धे "ॐअग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम"। ततोऽन्वारब्धो भुरादिप्रजापत्यन्ता नवाहुतयः। संस्रवप्राशनादिविमोकान्तं कृत्वा स्वर्णादिपात्रे सर्वान् रसान् सर्वमन्न मध्वाज्यं चैकीकृत्य हस्ते गृहीतसुवर्णेन देवताग्रे मातुरुत्सङ्गस्थं शिशुं "हन्त" इति मन्त्रेण प्राशयेत् । कुमार्यास्तु तूष्णीमेव। तत उपकल्पितवस्तुसमीपे शिशुमुपवेश्य तन्मते यदेवादौ गृह्णाति तेन तस्य जीविका परीक्षा कर्तव्या।

॥अत्र जीविकापरीक्षा मार्कण्डेयेनोक्ता॥

"देवाग्रतोऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः ।

अस्त्राणि चैव शस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥

4.5 जीविकापरीक्षा-

बालक को भूमि में बैठाकर उसके आगे वस्त्र, शस्त्र- उपकरण (कम्प्यूटर,ऑटोस्कोपादि) पुस्तक, लेखनी, सुवर्ण एवं चाँदी रखें। वह बालक पहले जिस वस्तु को उठाएँ उसी वस्तु के के अनुसार उसकी जीविका विद्वानों ने कही है यथा-

तस्मिन्काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च।

स्वर्ण रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥22॥

4.6 आशीर्वाद- ब्राह्मण भोजन- श्रद्धा के अनुसार ब्राह्मण एवं कुटुम्ब को भोजन कराकर उनसे तथा ज्येष्ठ व्यक्तियों से देशाचार के अनुसार बालक सहित सपरिवार आशीर्वाद प्राप्त करे।

इति अन्नप्राशन प्रयोगः

इकाई:5, वर्धापन विधि(जन्मदिवस)

5.1 वर्धापन विधि एवं परिचय:-

स्पष्ट प्रयोगः-

वर्धापनं प्रतिवर्षे जन्मतिथौ कार्यम्। तत्र पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या। तिलोद्वर्तनं कृत्वा तिलोदकेन स्नात्वा नव्यवस्त्रं परिधाय कृतनित्यक्रियो दक्षिणपाणौ। गुग्गुलादिपञ्चद्रव्यगर्भांपोटलिकामावध्य गृहान्तर उपविश्य आचम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य "ममामुकोगोत्रस्यानमुकशर्मणः आयुष्याभिवृध्यर्थे वर्षवृद्धिकर्म(जन्मदिवसकर्माहं) करिष्ये। निर्विघ्नार्थं गणपतिपूजनञ्च करिष्ये" "गणानान्त्वे" तिमन्त्रेण षोडशोपचारैर्गणपतिं पूजयित्वा प्रणम्य "ॐ गणपते। क्षमस्वे" ति विसर्जयेत्।प्रक्षालितपीठे तण्डुलपुञ्जेषु गौर्यादिमातरः पूज्याः।

गौरी१ पद्मा२ शची३ मेंधा४ सावित्री५ विजया६जया७ देवसेना८ स्वधा९ स्वाहा१० मातरो११ लोकमातरः१२॥धृतिः१३ पुष्टि१४स्तथा तुष्टि१५ रात्मनः कुलदेवता । गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश॥षोडशोपचारैः पूजयेत् ।ततोघृतेनवसोर्द्धारां कुर्यात्। पूजयेत्।ततः

"ॐ गणपतये नमः १। ॐ दुर्गायै नमः २ । ॐ कुलदेवतायै नमः ३। ॐ गुरुभ्यो नमः ४ । ॐ देवताभ्यो नमः ५।४ अग्नये नमः ६ । ॐ विप्रेभ्यो नमः ७। ॐ मातृभ्यो नमः ८। ॐ पितृभ्यो नमः ९ । ॐ सूर्याय नमः १०। ॐ सोमाय नमः ११ । ॐ भौमाय नमः १२ । ॐ बुधायनमः १३ । ॐ बृहस्पते नमः १४। ॐशुक्राय नमः १५ । ॐ शनैश्चराय नमः १६ ॐ राहवे नमः १७ । ॐ केतुभ्यो नमः १८ । ॐ पञ्चभुतेभ्यो नमः १९ । ॐ कालाय नमः२० । ॐ युगाय नमः२१ ॐ संवत्सराय नमः २२ । ॐ मासाय नमः २३ । ॐ पक्षाय नमः २४। ॐॐ अस्मज्जन्मनक्षत्राय नमः२० । ॐ अस्मज्जन्मतिथये नमः२६। ॐ अस्मज्जन्मराशये नमः २७ । ॐ शिखायै नमः २८। ॐ सम्भूत्यै नमः२९ । ॐ प्रीत्यै नमः ३० । सन्तत्यै नमः ३१। ॐ अनुसूयायै नमः३२ । ॐ क्षमायै नमः ३३ । ॐ विष्णवे नमः३४। ॐ भद्रायै नमः ३५ । ॐ इन्द्राय नमः ३६ । ॐ अग्नये नमः ३७। ॐ यमाय नमः३८ । ॐ निर्ऋतये नमः ३९ । ॐ वरुणाय नमः ४० । ॐ वायवे नमः ४१ । ॐ धनदाय नमः ४२ । ॐ ईशानाय नमः ४३ । ॐ अनन्ताय नमः ४४। ॐ ब्रह्मणे नमः ४५ । इति प्रत्येकं षोडशापचारैः सम्पूज्य । ततः "षष्ठिके इहागच्छ इह तिष्ठे" त्वावाह्य षोडसोपचारैः पूजयेत् । षष्ठया नैवेद्यं दधिभक्तम्(दहि चावल इति भाषायां) ।

ॐ जगन्मातर्जगद्धात्रि जगदानन्दकारिणि ।।

प्रसीद मम कल्याणि नमोऽस्तुषष्टिदेवते । ॥इत्यनेन नमस्कृत्य,

रूपन्देहि यशो देहि भद्र भगवति देहि में ।

पुत्रान्देहि धनन्देहि सर्वान्कामांश्च देहि में ॥

इत्यनेन वरं प्रार्थ्य प्रणम्य विसर्जयेत्। ततश्चन्दनेनाष्टदलङ्कृत्वा अक्षतानादाय ।

"ॐ भगवन् मार्कण्डेय इहागच्छ इहतष्ठेत्यावाह्य "स्थापनं कृत्वा पाद्यादीषोडशोपचारपूजनङ्कृत्वा "मार्कण्डेयाय नमः" इति नाममन्त्रेण

ॐ आयुःप्रद महाभाग सोमवंशसमुद्भव ।

महातपो मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पाञ्जलिमन्त्रेण संपूज्य गन्धादीनि दत्वा वरं प्रार्थयेत्।

॥अथ मार्कण्डेयप्रार्थना॥

मार्कण्डेयाय मुनये नमस्ते महदायुषे ।

चिरञ्जीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुनेः ॥

मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ।

आयुरारोग्यसिद्धर्थमस्माकं वरदो भव ॥

नराणामायुरारोग्यैश्वर्य सौख्यसुखप्रद ।

सौम्यमूर्ते नमस्तुभ्यं भृगुवंशवराय च ॥

महातपो मुनिश्रेष्ठ सप्तकल्पान्तजीवन ।

मार्कण्डेय नमस्तुभ्यं दीर्घायुष्यं प्रयच्छ में ॥

मार्कण्डेय महाभाग प्रार्थये त्वां कृताञ्जलिः ।

चिरञ्जीवी यथा त्वं भो भविष्येऽहं तथा मुने ॥ इति वरं प्रार्थ्य प्रणम्य

5.2 गणपत्यादि सप्त चिरंजीव पूजन-

सप्तचिरञ्जीविपूजनम्

"अश्वत्थाम्ने नमः१। बलये नमः २ । व्यासाय नमः३ । हनुमते नमः। बिभीषणाय नमः५ । कृपाय नमः६ । परशुरामाय नमः७ । कार्तिकेयाय नमः८ । जन्मदेवतायै नमः९ । स्थानदेवतायै नमः १० । वासुदेवाय नमः ११ । क्षेत्रपालाय नमः १२ । पृथिव्यै नमः १३ । अब्भ्यो नमः १४ । तेजसे नमः १५ । वायवे नमः १६ । आकाशाय नमः १७" । इष्टदिग्भागे संपूज्य,

प्रीयन्तां देवताः सर्वाः पूजां गृह्णन्तु तां मम ।

प्रयच्छन्त्वायुरारोग्यं यशः सौख्यं च सम्पदः ॥

॥अथ कर्माङ्ग हवनम्॥

अथाचार्योऽभिस्थापनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा, मध्वाज्यदधिदूर्वा "त्र्यम्बकं" इति मन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा जुहुयात्। इति मृत्युञ्जयहोमः । ततो यथोक्तदेवताभ्योयथोक्तमन्त्रैर्दूर्वान्घृताक्ताञ्जुहुयात्। ततो वह्निं सम्पूज्य। स्विष्टकृद्धोमः । बलिं दद्यात् । पायसान्नेन सर्वभूतो बलिं दद्यात् । होमशेषं समापयेत् । ब्राह्मणाय तिलान्दद्यात् । देवद्रव्याणि सम्पूज्य हस्ते कुशमवजलान्यादाय "मदीयजन्मदिने दीर्घायुष्कामः एतान् तिलान् सोमदैवतान् यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे" इति दद्यात् । तत "स्तण्डुलेभ्यो नमः" इति तण्डुलान्सम्पूज्य जलेन सिक्त्वा कुशयवजलान्यादाय "मदीयजन्मदिने दीर्घायुष्कामः एतान्सोपस्करान् तण्डुलान् चन्द्रदैवतान् यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे" दद्यात् । **"घृताय नमः" इति घृतं सम्पूज्य "इदं घृतं प्रजापतिदैवतं यथानामगोत्रायब्राह्मणायदातुमहसु त्सृजे" ।**

ततस्तिलगुडसहितं दुग्धपानम् । तत्र मन्त्रः-

अञ्जल्यर्थमिदं क्षीरं सतिकं गुढमिश्रितम् ।

मार्कण्डेयवरं लब्ध्वा पिबाम्यायुष्यहेतवे ।।

तत आचम्य, "मार्कण्डेय ! क्षमस्वे"ति विसर्जयेत् ।

सप्तचिरञ्जीव पूजन-

अश्वत्थामा बहिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः ।

कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥

सप्तैतान्यः स्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।

जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥

इति वचनादश्वत्थामादीन्मार्कण्डेयान्तानष्टौ स्मरेत् । आचार्याय गां दद्यात्। ब्राह्मणान्भोजयेत् । स्वयं भुञ्जीत ।

॥ इतिवर्धापनविधिः ॥

5.4 आयुष्य होम- पृष्ठ संख्या 16 पर देखें।

5.5 दीर्घायुष्यार्थ दान

5.6 वेदोक्त आशीर्वाद-

ब्राह्मणों के हाथों में अक्षतों को प्रदान कर।

ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितꣳयदायुः ॥३॥ ॐदेवानाम्भद्रासुमतिर्ऋजूयतान्देवानाꣳ रातिभिनोनिवर्त्तताम्। देवानां सक्ख्यमुपसेदिमाद्वयन्देवानऽआयुःप्रतिरन्तु जीवसे।।15.24॥ ॐ दीर्घायुस्तऽओषधेखानितायस्मैचत्त्वाखनाम्यहम्।। अथोश्वन्दीर्भूत्वाश तवल्शाविरोहतात्।।100.12।।

ॐ द्रविणोदाः पिपीषतिजुहोतप्रचतिष्ठत॥ नेष्ट्रादृतुर्भिरिष्यत।।22.26।। ऋक् ॐसवितापश्चात्सवितापुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सवितादरात्तात् ॥ सवितानः सुवतुसर्वतातिंसवितानोरासतांदीर्घमायुः।। ॐ सवितात्त्वासवानाꣳसुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमोवनस्प्पतीनाम्॥ बृहस्पतिर्वाऽइन्द्रोऽज्ञैष्ट्यारुद्रः पशुभ्योमित्रः सत्त्योवरुणोधर्म्मपतीनाम्॥39.9॥ ॐनवोनवोभवतिजायमानोह्नां केतुरुषसमामेत्यग्रम्।। भागदेवेभ्योविदधात्यायन्प्रचन्द्रमर्मास्तिरतेदीर्घमायुः।।ॐनतद्रक्षाꣳ सिनपिशाचास्तरन्तिदेवानामोजः÷प्रथमजꣳ ह्येतत्। योबिभतिदाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ सदेवेषुकृणुतेदीर्घमायुः समनुष्येषुकृणुतेदीर्घमायु॥51.34॥

ॐउच्चादिविदक्षिणावन्तोऽअस्थुर्येऽअश्वदाःसहतेसूर्येण॥ हिरण्यदाऽअमृतत्वं भजन्तेवासोदाः सोमप्रतिरन्तऽआयुः।।8।।ॐ उच्चातेजातमन्धसोदिविसद् भूम्याददे।। उग्रꣳ शर्म्ममाहिश्रवः॥36.26॥ इत्याशीर्वादः

इकाईः 6, कर्णवेध संस्कार

6.1. कर्णवेध संस्कार परिचय-

नवजात शिशु के सुवर्ण की शलाका से कर्णों के छेदन को ही कर्णवेध संस्कार कहते है। वैदिक संस्कार के साथ- साथ आयुर्वेद के अनुसार भी इससे "हाइड्रोसील" और अस्थि रोगों का सामना नहीं करना पड़ता है।यथा

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत्। शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्। व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये। (सुश्रुतः, शरीरस्थानम् 16.1. 24)

काल निर्णय-

जन्मतो दशमे वाह्नि द्वादशे वाथ षोडशे।

सप्तमे मासि वा कुर्याद्दशमे मासि वा पुनः॥

शिशु के जन्म के पश्चात दसवे दिन अथवा बारहवे दिन या सोलहवे दिन मे करना चाहिए अथवा सातवें या दसंवे मास के किसी शुभ दिन में कर्णवेध संस्कार करना चहिए।

मासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे द्वादशेऽह्नि वा।

कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृध्दये॥ (गर्ग)

प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमे तथा ।

द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम्॥ (मदनरत्न)

बृहस्पति के अनुसार-

मास एवं पक्ष निर्णय-

सप्तमे मासि वा कुर्यादष्टमे मासि वा पुनः।

पक्षयोरुभयोर्मुख्यं कृष्णोऽन्त्यांशत्रिकं विना।।5।।

सातवें अथवा आठवें मास में दोनों पक्षों में कृष्ण पक्ष के अन्तिम तीन दिनों को त्यागकर कर्णवेध करना चाहिए।

कार्तिकेपुष्यमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपिवा ।

कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ (राजमार्तण्ड)

वेध्यौ कर्णावदन्तस्य विषमेऽब्दे पिता शिशोः ।

शुक्लपक्षे शुभे वारे चैत्रपौषोर्ज्जफाल्गुने ॥ (ज्योतिर्निबन्ध)

नक्षत्र निर्णय-

कर्णवेधे सदा वह्निनोवाच कमलासनः।

सौम्याक्षी दितितिष्याश्विसावित्रान्तरवैष्णवम् ।।6।।

ब्रह्मा जी ने कर्णवेध में अग्नि नक्षत्र कृत्तिका को छोड़कर मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी, हस्त एवं श्रवण शुभ होते हैं।

श्रविष्ठारेवती चैवं शुभा स्युः कर्णवेधने।।7।।

धनिष्ठा और रेवती भी कर्णवेध में शुभ होते हैं। अष्टमी, दर्श (अमावस्या) और रिक्ता तिथियाँ कर्णवेध में वर्ज्य हैं। शेष शुभ होती हैं।।

तिथि एवं वार निर्णय-

अष्टमीदर्शरिक्ताश्च वर्ज्याः शेषास्तु शोभनाः।।7।।

अष्टमी, दर्श (अमावस्या) और रिक्ता तिथियाँ कर्णवेध में वर्ज्य हैं। शेष शुभ होती हैं।।

एकादश्यष्टमीपर्वरिक्तावर्ज्याः शुभावहाः।

श्रेष्ठाश्च तिथयः सर्वाः कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ (नृसिंह)

तिथयोऽनिष्टवर्य्याश्च स्थिराश्च करणो शुभाः।

मन्दारार्मांशवाराः स्युः वर्ज्याः शेषास्तु शोभनाः।।8।।(मुहूर्त्तविधान)

अनिष्टकारक तिथियाँ वर्ज्य हैं। स्थिर तिथियाँ एवं करण शुभ हैं। मन्द, मंगल और रविवार भी कर्णवेध में वर्ज्य हैं। शेष दिन शुभ होते हैं।

गुरुशुक्रेन्दुजेन्दूनां पूज्या वारांशकोदयाः।

वृषवर्ज्याः स्थिरासर्वे न शुभाः मकरादिभौ।।9।।

गुरु, शुक्र, बुध और चन्द्रमा के वार और नवांश कर्णवेध में पूज्य होते हैं। वृष राशि को छोड़कर स्थिर राशियाँ तथा नकरण शुभ हैं। मकर और कुम्भ लग्न को त्याग देना चाहिए।

मध्यमौ शेषिताः सर्वे शुभदाः कर्णवेधने।

वारनक्षत्रयोर्योगाः शुभा ये तु शुभप्रदाः।।10।।

कर्णवेध में शेष सभी मध्यम और शुभता प्रदान करनेवाले होते हैं। वार और नक्षत्रों का शुभ योग कर्णवेध में शुभप्रद कहा गया हैं।

ताराबलाशुभा ये ते दोषदाः कर्णवेधने।

यस्मिन् वारे तिथितारे द्वौ द्वौ युक्तौ न शोभनौ।।11।।

अशुभ तारा का बल कर्णवेध में दोष प्रदान करता हैं। जिस दिन तिथि और तारा दोनों दो-दो हों, वे शुभ नहीं होते हैं।

सन्धिर्द्वयोः पुरो लग्नाद्यदि शुभता तयोः।

सन्धायां तौ शुभौ रात्रौ गुलिके पापवीक्षिते ।।12।।

लग्न से दोनों की सन्धि सामने हो तो, वे शुभ हैं। सन्ध्या में दोनों शुभ हैं तथा पाप ग्रहों से दृष्ट रात्रि के गुलिक में कर्णवेध शुभ माना गया हैं।

विषनाड्यादियोगेषु परोक्तेष्वखिलेषु च।

पूर्वाह्ने सुप्रशस्तं स्यादपरालेऽतिशोभनम् ।।13।।

विष नाडी आदि के योग से उक्त शत्रु के बल से युक्त होने पर पूर्वाह्न में सुप्रशस्त होता है। अपराह्न में तो अति शोभन होता है।

मध्याह्ने निशिवर्ज्य तन्मुहूर्त्तस्यातिनाधिकम्।

रन्ध्ररारिव्ययगो नेष्टो गुरुः शेषेषु शोभनः।।14।।

रात्रि को छोड़ कर मध्याह्न में कर्णवेध का मुहूर्त्त अधिक शुभ होता है। रन्ध्र, षष्ठ तथा द्वादश भाव में गुरु इष्ट नहीं है। शेष स्थानों में शुभ होता है।

भावनिर्णय-

सुते रन्ध्र गतः सोमो नेष्टस्त्वन्यत्र शङ्करः।

षड्वाभाष्टगतः शुक्रो न शुभोऽन्यत्र शोभनः।।15।।

पञ्चम तथा अष्टम में प्राप्त चन्द्रमा नेष्ट है, लेकिन अन्यत्र कल्याण करने वाला होता है। षष्ठ अथवा अष्टम भाव में प्राप्त शुक्र शुभनहीं होता है, अन्यत्र शुभ माना गया है।

चन्द्राद्वित्रिसुतास्तेषु धर्मकर्माशगः शुभः।

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः स्युः कर्णवेधने ।।16।।

चन्द्र द्वितीय, तृतीय, पञ्चम, नवम एवं दशवें भाव में शुभ, तृतीय, षष्ठ तथा एकादश भावगत पापग्रह कर्णवेध में शुभ होते हैं।

अनुक्तेष्वऽपि भावेषु स्ववर्गस्थाः स्वतुङ्गगाः।

मित्रराशिरताश्चैव मित्रदृष्टाश्च शोभनाः।।17।।

अनुक्त भावों में, अपने वर्ग में या उच्च भाव में अथवा मित्र की राशि में विद्यमान और मित्र ग्रह से दृष्ट ग्रह शुभ होते हैं।

अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः स्युः कर्णवेधने।

स्ववर्गसहिता वापि स्वतुङ्गादिगता अपि।।18।।

कर्णवेध में अष्टमस्थ सभी ग्रह नेष्ट हैं। अपने वर्ग में स्थित होने या अपने उच्च में होने पर भी नेष्ट होते हैं।

एवं प्रोक्तस्य कालस्य दुर्लभे कर्णवेधने।

योगैरपि च कर्त्तव्यमेवं कुर्वन्न दोषभाक् ।।19।।

इस प्रकार कहे गए काल में कर्णवेध दुर्लभ होता है। इस प्रकार के योगों से युक्त समय में कर्णवेध करना चाहिए। ऐसा करने से कर्तादोष का भागी नहीं होता है।

शुभग्रहाः स्युर्लग्नेन्दौ केन्द्रे वोपचयेऽथवा।

बलिनो यदि सम्पत्यै योगोऽयं कर्णवेधने।।20।।

शुभ ग्रह यदि लग्न और चन्द्रमा के साथ हों, केन्द्र अथवा उपचय में हों तथा यदि बली हों, तो यह योग कर्णवेध में सम्पत्ति के लिए होता है।

वारनक्षत्रयोर्योगाः शुभाय तु शुभप्रदाः।

त एव न शुभा ये ते दोषदाः कर्णवेधने।।21।।

शुभ वार और नक्षत्र का योग शुभता प्रदान करनेवाला होता है। जो कर्णवेध में दोष देने वाले कहे गए हैं। वे ही शुभ नहीं होते हैं।

महाबलयुतो जीवः शुक्रस्योपचये स्थितः।

शुक्रोऽपि तद्वदिन्दोश्चेत्स योगः कर्णवेधने।।22।।

शुक्र से उपचय (३, ६, १०, ११) स्थानों में बृहस्पति अधिक बलवान् होता है। शुक्र भी यदि चन्द्रमा से उपचय स्थान में हो तो यह योग अत्यन्त शुभ होता है।

वक्री महाबली सौम्यः प्रत्यक्षाङ्गगतो मतः।

चन्द्रस्य कण्टकस्थाने संयोगः कर्णवेधने ।।23।।

वक्री महाबली सौम्य (बुध) ग्रह प्रत्यक्ष अङ्ग(षष्ठभाव) में चन्द्रमा में हो और कण्टक स्थान में हो तो यह संयोग कर्णवेध में शुभ होता है।

शातकुम्भमया सूची वेधने शोभनप्रदा।

राजता वायसीवापि यथाविभवतः शुभा।।24।

कान में छिद्र हेतु सुवर्ण की सुई शोभन, चांदी अथवा लोहे की अथवा अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रयुक्त सुई शुभ होती है।

आदौ सम्पूज्य दैवज्ञं भिषजं दैवमेव च।

विदुषो ब्राह्मणांश्चैव कर्मकारं तथैव च।।25।।

सर्वप्रथम दैवज्ञ की पूजा तत्पश्चात् वैद्य, भाग्य, विद्वान ब्राह्मण और छेदन करने वाले कर्मकार की पूजा करनी चाहिए।

ब्राह्मणैराशिषः कृत्वा बन्दिभिश्च प्रियैर्जनैः।

दासीभिश्चापि शङ्खश्च भेरीदुन्दुभिपूर्वकैः।।26।।

सुभूमौ प्रवणे रम्ये शुचौ देशेंवरे रवौ।

सन्निधौ वेधयेत्कर्णौ स्त्रीपुंसोर्वामदक्षिणौ ।।27।।

ब्राह्मणों के द्वारा आशीर्वाद कराकर, बन्दीजन प्रियजनों तथा दासियों के साथ शङ्ख, भेरी, दुन्दुभी के वादन से आकाश मण्डल के पूरित होने पर प्रवण सुन्दर भूमि में, पवित्र स्थान में सूर्य के प्रकाश में कर्णवेध करना चाहिए। स्त्री और पुरुष के क्रमशः बाएँ एवं दाहिनें कान का भेदन कराना चाहिए।

क्रमेण पूर्वमव्योमौ शिशोरायुः श्रियः प्रदौ।

इत्युक्तं ब्रह्मणा वज्रिन् कर्णवेधाह्वयं शुभम् ।।28।।

इस क्रम से मुहूर्तों में कर्णवेध करने पर शिशु की आयु और धन सम्पत्ति की वृद्धि होती हैं। हे इन्द्र ! इस प्रकार ब्रह्मा के द्वारा कर्णवेध का शुभ मुहूर्त्त कहा गया है।

अयुग्म वर्ष विचार-

अर्केऽनकुले शशिनिप्रशस्तेताराबले चन्द्रविवृद्धिपक्षे।

अयुग्म वर्षे शुभदं शिशूनां कर्णस्य वेधं मनयो वदन्ति॥ (वीरमित्रोदय)

ताराचन्द्रानुकूलेऽवह्नि शस्ते भास्वति वाक्पतौ।

अयुक्संवत्सरे प्राहुः कर्णवेध विधिं बुधा:॥

अत्र अजातदन्तस्यैव कर्णवेधो मुख्यः।

शकुन्यादीनि विष्टिश्च विशेषेण विवर्जयेत् ।

शुभयोगेषु सर्वेषु कर्णवेधः शुभावहाः॥

कर्णद्वयादितिक्षिप्रमृदुभैस्त्र्यायगै: शुभै:।

गुरौ लग्नेऽथ केऽप्याहुरुत्तरासु श्रुतिष्वधः॥ (ज्योतिर्निबन्ध)

6.2 कर्णवेध विधि-

पूर्वोक्तदिने कुमारेण सह पितरौ स्नात्वाऽहतवासांसि परिधाय उपविश्य देशकालौ स्मृत्वा "अस्मिन्पुण्याहे अस्य कुमारस्य कर्णवेधमहङ्करिष्ये । तदङ्गत्वेन विहितं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्दं चाहङ्करिष्ये"सर्वं सम्पाद्य पूर्वाह्णे "केशवं हरं ब्रह्माणं चन्द्रमसं सूर्य दिक्पालान् अश्विनीकुमारौ सरस्वतीं ब्राह्मणान् गवां" नाममन्त्रेण पूजयित्वा, ततो गुरून् वरासने उपवेश्य पूजयित्वा, ततो वरासने धात्रीं उपवेश्य तदुत्सङ्गे पूर्वाभिमुखमलङ्कृतं बालकं घृत्वा कुमारहस्ते शर्करादि- मधुरं दत्वा पिता अन्यो वा दक्षिणकर्णं यथोक्तसूच्या वेधयेत् । ततो वामम् । "भद्रं कर्णेभि" रित्यनेन दक्षिणकर्णमभिमन्त्रयते ।'व्वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्तिकर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना । योषेव शिक्ङ्गे व्विततधिधन्वङ्या इयं समने पारयन्ती । इति मन्त्रेण वाममभिमन्त्रयते । ततः कर्णवेधानिमित्तं यथाशक्तिब्राह्मणभोजनम् । वेधात्तृतीयनक्षत्रे उष्णवारिणा क्षालयेत्॥

6.3 पुण्याहवाचनादि नान्दीश्राद्धान्तपूजन- कृपया पृष्ठ संख्या 16 से देखें।

6.4 कन्यायानासावेध एवं ब्राह्मण भोजन – श्रद्धा के अनुसार ब्राह्मण भोजन एवं दान करना चाहिए।

कन्याया घ्राणवेधः सन्सद्वारे विषमेऽब्दके।

आद्यायामे सिते पक्षे मैत्रक्षिप्रोत्तराचरे॥

॥ इति कर्णवेधः ॥

इकाईः 7 अक्षरारंभ संस्कार

अथ विद्यारम्भः - मानवजीवन का प्रथमसोपान है ज्ञान।

विद्यया सर्वसिद्धिः स्यात् सम्पदः प्राप्तिरेव च।

समुच्चया सर्वसिद्धिः स्यात् समुच्चयाप्तिरेव च ।।(बृहस्पति)

उपरियुक्त वचन से तात्पर्य है कि आचार्य देवगुरुबृहस्पति वचन से ज्ञात होता है कि विद्या प्राप्त कर सभी कार्यों में सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं एवं समस्त प्रकार की सम्पदा स्वतः ही प्राप्त हो जाएंगी। अतः सभी सिद्धि प्राप्त करने के लिए शुभसमय में विद्या प्रारम्भ करनी चाहिए। अतः यज्ञोपवीतसंस्कारानन्तर प्रतिदिन सायं एवं प्रातःकाल में सन्ध्याबन्धन भी करना चाहिए।

7.1 **संस्कार परिचय**- जब बालक/ बालिका की आयु शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाय, तब उसका विद्यारंभ संस्कार कराया जाता है। इसमें समारोह के माध्यम से जहाँ एक ओर बालक में अध्ययन का उत्साह पैदा किया जाता है, वही अभिभावकों, शिक्षकों को भी उनके इस पवित्र और महान दायित्व के प्रति जागरूक कराया जाता है कि बालक को अक्षर ज्ञान, विषयों के ज्ञान के साथ श्रेष्ठ जीवन के सूत्रों का भी बोध और अभ्यास कराते रहें।

विद्यारम्भ काल-

प्राप्तेतु पञ्चमे वर्षे अप्रसुप्ते जनार्दने॥

षष्ठीं प्रतिपदं चैव वर्जयित्वा चतुर्दशी॥

पर्वाष्टम्यौ तथा रिक्तां सौरभौमदिनं तथा॥

एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भं तु कारयेत्॥ मार्कण्डेयः॥

नक्षत्रादिशुद्धि- **हस्तादित्यसमीरपौष्णपुअजिन्मित्राश्विचित्राच्युतेष्वारार्कांकिंदिनोदयादिरहिते स्थिरे वोभये॥ पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदंषष्ठ्यष्टमीं द्वादशीं हित्वा चाष्टमशुद्धिभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः॥** यदि भाद्रपदमास की पूर्णिमा तिथि को कन्याराशि में सूर्यसङ्क्रमण हो तब सरस्वतीयोग होता है, इसमें विद्यारम्भसंस्कार करने से चतुर्दशविद्याओं का ज्ञान होता है। जैसा कि देवगुरु बृहस्पति के वचन हैं-

कन्यार्के यदि संयुक्ते योगे सारस्वते तदा ।
आरम्भेत्सर्ववेदांश्च विद्याश्चैव चतुर्दश ।।

इस काल के अभाव में उत्तरायण के प्रथमतृतीयमासों में विद्यारम्भशुभ है। वेदोक्तप्रमाण है कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर ये त्रिदेव विद्या प्रदान करते हैं। इसलिए सौम्यादय चार तारा मृगशिरा-हस्त-स्वाति-चित्र शुभ होते हैं।

विद्या प्रभावमेतेषां त्रिमूर्तीनां त्रिमूर्तिता।
ताराश्चतस्रः सौम्याद्या हस्तास्तिस्रः सवैष्टवाः।।

मुहूर्तचिन्तामणीकार

गणेश वाग्रमाः-विष्णु-प्रपूज्य पञ्चमाब्दके तिथौ शिवाकदिग्द्विष्टशरत्रिके रवावुदक् ।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितोशतक्षमित्रभे। चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ।।(37 -5)

मुहूर्तमार्त्तण्डे - **विद्यां मौञ्जयुक्तकाले स्थिरचरहरिजत्र्यत्तरब्राह्महीने ।**
मौञ्जया ऊर्ध्वं गणेशं गिरमपि विधिवत्पूजित्वारभेत ।।(18 -3)

अनुराधा, अश्विनीनक्षत्र में विद्यारम्भ शुभ है ऐसे ब्रह्मा के वचन हैं। एवं उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद रेवती, रोहिणी नक्षत्रों में सारस्वतयोग तथा सप्तर्षियोग में प्रतिपदा-द्वितीया- तृतीया- पञ्चमी –षष्ठी- दशमी तथा एकादशीतिथिओं में विद्यारम्भ अत्यन्त शुभ होता है। सप्तमी, त्रयोदशी तिथि में विद्यारम्भ अशुभ है। कदाचित् सप्तमी, त्रयोदशी तिथि में विद्यारम्भ कर सकते हैं लेकिन रिक्तातिथियों (4,9,14) को विद्यारम्भ में सर्वदा त्यागना चाहिए। यथोक्तं आचार्य बृहस्पति-

प्रथमा च द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा ।
षष्ठी च दशमी चैवमैकादश्यःसुपूजिताः।।
विघ्नदौ वर्जितव्यौ तौ सप्तमी च त्रयोदशी ।
रिक्तानध्यायसंज्ञा ये विशेषा ते विवर्जिताः।
त्रयोदश्यापि सप्तम्या कदाचिच्छुभदा तिथिः।।

मुहूर्तचिन्तामणिकारः –

मृगात्कराच्छु तेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये गुरुद्वयऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षड्वरत्रिके ।

शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः शुभैरधीतिरुमा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता।। (38-5)

जब चन्द्र बुधनवांश में , बुध और बृहस्पति शुक्र से संदृष्ट या वारवर्ग, लग्न में शनि-मङ्गल की दृष्टि हो तो भी विद्यारम्भ न अशुभ। रवि-चन्द्र का योग हो तो मध्यमसंज्ञक अन्य ग्रहों के योग में तो उत्तम होता है। चरस्थिरद्विस्वभावर-ाशि विद्यारम्भ में यथाक्रम मध्यम अधम और उत्तम होती हैं।

मध्यमौ रविशीतांशौःशेषाणामुत्तमास्स्मृताः।

चरस्थिरोभयाः नक्षत्रा मध्यमाधमपूजिताः ।।

यदा चन्द्रो बुधांशस्थौ बुधजीवसितेक्षितः।

वारवर्गोदया वर्ज्या दर्शनं चार्किभौमयोः।।

विद्यायोग में दृष्ट सभी ग्रह पूज्य होते हैं ।विद्या आरम्भसमय में पापग्रहः तृतीय-षष्ठ-एकादश एवं शुभग्रहाः त्रिकोण-पञ्चम – नवमभावों में शुभ होते हैं।

विद्यायोगेषु दृष्टेषु सर्वे पूज्यतमा ग्रहाः।

त्रिषडायगताः पापास्त्रिकोणे कण्टके शुभाः ।।

विद्यारम्भ में पाप ग्रहों को छोड़कर सभी शुभग्रह पञ्चम में शुभ। पापग्रहों से संयोगे न हो, लग्न में चन्द्र का पुत्र बुध विशेषरूप से शुभ होता है तथा सप्तम में शुभग्रह व पापग्रह शुभ नहीं होते हैं। लग्न में विशेषरूप से शुभग्रह शुभ होते हैं । यथा- बृहस्पतिवाणी-

विद्यारम्भे सुपूज्यास्स्युः पञ्चमे पापवर्जिते ।

पञ्चमस्थाश्शुभास्सर्वे सुपूज्या नीचवर्जिताः।।

विशेषादुदितस्सौम्यः पापसंयोगवर्जितः।

न कोऽपि सप्तमे पूज्यस्स्थितः क्रूरोऽपि वा पुनः।

विशेषाच्छुभगे लग्ने शुभग्रहयुते शुभः ।।

ध्रुवनक्षत्र(रोहिणी-उत्तरफाल्गुनी-उत्तरषाढा-उत्तरभाद्रपद) सर्वसाधारण सभी शास्त्रों तथा समस्त विद्याओं, सभी प्रकार के ज्ञान हेतु मृदूसंज्ञकनक्षत्र (मृगशिरा-अनुराधा-चित्रा-रेवती) में अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए।

ध्रुवाणि सर्वशास्त्रेषु सर्वसाधारणान्यपि ।

मृदूनि सर्वविद्यासु सर्वज्ञानेषु भान्यपि ।।

मृदु –ध्रुवक्षिप्रचरे ज्ञे गुरौ वा खलग्नगे ।
विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते ।।(मु.मा. 41)

7.2 पुण्याहवाचनादि नान्दीश्राद्धान्तपूजन- कृपया पृष्ठ संख्या 16 से देखें।

7.3 पूजन सामग्री- श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन, बैर, केला, सेव, पुष्प, जलपात्र, जल, अक्षत,चन्दन, तिल, सिंदूर, पुष्पमाला, धूप, दीप, प्रसाद, केले के पत्ते, चौकी, थाली, अबीर, सुपारी, नैवेद्य त्रिकुशा, पान, सुपारी, तिल, द्रव्य, फूलबत्ती, कपूर, कॉपी- पट्टिका, कलम- खडिया आदि।

7.4 **अक्षरारंभ विधि** - उक्तकाले शिशुना सह यजमानो मंगलस्नानं विधायाहते वाससी परिधायालङ्कृतो मङ्गलतिलकं धृत्वा शुभासनं उपविश्य आचम्य प्राणानयम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य अस्य कुमारस्य लेखनवाचनादिविपुलविद्याप्राप्तिद्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं विद्यारम्भङ्करिष्ये। तत्र निर्विघ्नतार्थं श्रीगणपतिपूजां करिष्ये। इति सङ्कल्प्य गणपतिं सम्पूज्य शुचौ देशे पीठोपरि तण्डुलान् प्रसार्य तदुपरि हरि लक्ष्मीं सरस्वतीं स्वविद्यासूत्रकारान् स्वविद्यां च नाममन्त्रेणावाह्य आवाहित देवताभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः पूजयेत्। ततः स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा मनोज्योतिरिति बलवर्धन नामानमग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यानादि वैकल्पिकावधारणान्तेऽन्वाधानं कुर्यात्॥ तत्र देवताभिध्यानं प्रजापतिं इन्द्रं अग्निं सोमं एता आज्येन॥ अथ प्रधानं॥ हरि लक्ष्मीं सरस्वतीं स्वविद्यासूत्रकारान् स्वविद्यां एताआज्येनैकैकया हुत्या॥अग्निं वायुं सूर्यं अग्नीवरुणौ अग्नीवरुणौ अयसमग्निं वरुणं सवितारं विष्णुं विश्वान् देवान् मरुत:स्वर्कान् वरुणं प्रजापतिं अग्निं स्विष्टकृतं एता अङ्गप्रधानार्था देवता आज्येन विद्यारम्भहोमकर्मण्यहंयक्ष्ये॥ दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्यैत्यादि आज्यभागान्ते प्रधानदेवताहोमं तत्तन्नाममन्त्रैः कृत्वा भूरादिस्विष्टकृदन्तदशाहुति होमं च विधाय प्रायश्चित्तहोमान्ते संस्त्रवप्राशनादि होमशेषं समापयेत्॥ ततो बालकः आवाहित देवता अध्यापनगुरुं पित्रादींश्च नमस्कृत्य अध्यापनगुरोःसमीपे प्रत्यङ्मुख उपविश्य रजतादि पाटिकायां कुङ्कुमादिकं प्रसार्य तदुपरि सुवर्णादिशलाकयागुरूपदिष्टमार्गेण श्री गणेशाय नमः ॐ नमः सिध्दम् इत्यादि संलिख्य वर्णदेवताभ्यो नमः इति मन्त्रेण षोडशोपचारैः सम्पूजयेत्॥ गुरुस्त्रिवारं कुमारेण लेखनं वाचनं च कारयेत्॥अथ कमारो देवता वर्णदेवता गुरुं च त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं सम्पूज्य तस्मै च उष्णीषं समर्प्य नमस्कृत्य ब्राह्मणभ्यो भूयसीं दक्षिणां दद्यात् आशिषो गृह्णीयात्॥ तत बालकं सुवासिन्यो निरांजयेयुः॥ ततो देवता अग्निं च विसृज्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा कर्म समापयेत् इति विद्यारम्भः॥

7.5 सरस्वती पूजन- पूजा हमारे नित्य कर्मों में से महत्त्वपूर्ण कर्म है। अतः सरस्वती का पूजन करने से पहले हमें स्वयं एवं आसन की शुद्धि, आचमन, प्राणायाम, गणेशादि ध्यान, संकल्प, करन्यास, गणपति प्रार्थना, नवग्रह पूजन, दिक्पाल पूजन करते हुए सरस्वती को नम्रता पूर्वक उनके अभिवादन के सहित पूजा करनी चाहिए इसमें वैदिक मन्त्रों से सर्वप्रथम भगवान् पञ्चायतन देवताओं की पूजा, ध्यान आदि के साथ पुष्पफ ,लादि आदि को षोडशोपचार .2 आवाहनम्.1 -आसनम् .3पाद्यम् .4अर्घ्यम् .5 आचमनम् .6स्नानम् .7वस्त्रम् .9 यज्ञोपवीतम् .8 .गन्धम् .10पुष्पम् .11धूपम् .12दीपम् .13 नैवेद्यम् .14ताम्बूलम् .15प्रदक्षिणा .16मन्त्रपुष्पाञ्जलि श्रद्धापूर्वक समर्पित करते हुए पूजा करनी चाहिए।

7.6 लेखणी एवं पुस्तिका पूजन- सरस्वती पूजा के तत्पश्चात् लेखणी एवं पुस्तिक का पूजन और आरती, प्रदक्षिणा, मन्त्रपुष्पाञ्जलि, सरस्वती स्तुति, समर्पण, क्षमाप्रार्थना, सरस्वत्यष्टोत्तरशतनामावलि एवं अन्य श्लोकों का उच्चारण कराते हुए देशकाल के अनुसार विद्यारम्भ संस्कार कराना चाहिए।

इकाईः 8 वैदिक सूक्त

8.1**शान्तिसूक्त**- ॐ आ नो॑ भ॒द्राः क्र॒तवो॒ यन्तु॒ श्वत॑वोद॑ब्धासो॒ऽअप॑रीतासऽउ॒द्भिद॑ः।
दे॒वानो॒यथा॒ सद॒मिद् वृ॒धेऽअस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वेदि॑वे ॥25.14॥
दे॒वानाम्भ॒द्रासु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तान्दे॒वानां॑ꣳ रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम्। दे॒वानां॑ꣳ
स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यन्दे॒वा न॒ऽआयुः॑ प्र॒तिर॑न्तु जी॒वसे॑॥25.15॥ तान्पू॒र्व्वया
नि॒विदा॑ हूमहे व॒यम् भगं॑मि॒त्रमदि॑ति॒न्दक्ष॑म॒स्रिध॑म्। अ॒र्य्यमणँ॒ व॒रुण॒ꣳ
सोम॑म॒श्विना॒ सर॑स्वतीनः॑ सु॒भगा॒ मय॑स्करत् ॥25.16॥ तन्नो॒ वातो॑ मयो॒भु वा॑तु
भेष॒जन्तन्मा॒ता पृ॑थि॒वी तत्पि॒ता द्यौः॒ ॥ तद्ग्रावा॑णः॑ सोमसुतो॑
मयो॒भुव॒स्तद॑श्विनाशृणुतध्विष्ण्या युवम् ।।25.17।।
तमीशा॑न॒ञ्जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पति॑न्धि॒यञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्। पू॒षा नो॒ यथा॒
वेद॑सा॒मस॑द् वृ॒धेर॑क्षि॒तापा॒युर॑द॑ब्धः॑ स्व॒स्तये॑ ।।25.18।। स्व॒स्ति न॒ऽइन्द्रो॑
वृ॒द्धश्र॑वाः॑ स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः॑।स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ऽअरि॑ष्टनेमिः॑
स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु॥25.19॥ पृष॑दश्वामरुतः॑ पृश्निमातरः॑
शुभं॒य्यावा॑नो वि॒दथे॑षु॒जग्म॑यः॑।अ॒ग्नि॒जि॒ह्वा मन॑वः॑ सूर॑चक्षसो॒ वि॒श्वे नो
दे॒वाऽअव॒सागम॑न्नि॒ह॥25.20॥ भ॒द्रङ्कर्ण्ये॑भिः॑ शृणुयाम देवा
भ॒द्रम्प॑श्येमा॒क्षभि॑र्य्यजत्राः॑। स्थि॒रैरङ्गै॑स्तुष्टु॒वाꣳस॑स्त॒नूभि॒र्व्यशेमहि दे॒वहि॑तँ
य्यदायुः॑॥21.25॥ श॒तमिन्नु श॒रदो॒ऽअन्ति॑ देवा॒ यत्रा॑ नश्च॒क्रा ज॒रस॑न्त॒नूना॑म्।
पु॒त्रासो॒ यत्र॑ पि॒तरो॒ भव॑न्ति॒ मा नो॑ म॒ध्या री॑रिष॒तायु॒र्गन्तो॑ः॑॥22.25॥
अदि॑ति॒र्द्यौरदितिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑ति र्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः॒। वि॒श्वे॑
दे॒वाऽअदि॑ति॒ः॑ पञ्च॒ जना॒ऽअदि॑तिर्ज्जा॒तमदि॑ति॒र्ज्जनि॑त्त्वम्॥23.25॥ ॐ द्यौः॒
शान्ति॑र॒न्तरि॑क्षꣳ॒ शान्ति॑ः॑ पृथि॒वी शान्ति॒रापः॒ शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्ति॑ः॑ ॥
व॒न॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्वि॒श्वे दे॒वाः॒ शान्ति॒र्ब्रह्म॒म्मु शान्ति॒ः सर्व्वꣳ॒ शान्ति॒ः शान्ति॑रे॒व
शान्ति॒ः सा मा॒ शान्ति॑रेधि॥36.17 ॥ ॐ यतो॑यतः॑ समीह॑से॒ ततो॑

नोऽअभयङ्कुरु॥ शन्नः कुरु प्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः ।।36.22।।सुशान्तिर्भवतु।।

8.2अग्निसूक्त-

अग्नि सूक्त में ९ मन्त्र हैं, इसके ऋषि मधुच्छन्दा विश्वामित्र, देवता अग्नि हैं एवं यह गायत्री छन्द में निबद्ध है। अग्नि को मनुष्य तथा देवताओं के मध्य सन्देश पहुँचाने वाला भी माना जाता है। यह ब्रह्माण्ड में शुद्ध एवं मौलिक ऊर्जा का विस्तार करता है। अग्नि को ऋग्वेद का प्रमुख देवता माना जाता है तथा 200 से अधिक सूक्त अग्नि देवता के प्राप्त होते हैं। इसे जातवेदस्, तनूनपात, इत्यादि विभिन्न नामों से भी जाना जाता है।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ७

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९

(ऋग्वेद- १.१.१ से १०)

१. यज्ञ के पुरोहित, दानादि गुणों से युक्त, यज्ञ में देवों को आवाहन करने वाले एवं यज्ञ के फलरूपी रत्नों को धारण करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ

२. जिस अग्नि की स्तुति प्राचीन तथा वर्तमान ऋषि भी करते हैं, वह अग्नि इस यज्ञ में देवों को बुलावें।

३. अग्नि की कृपा से यजमान धन प्राप्त होता है तथा वह धन दिन प्रतिदिन बढ़ता है, अनेक वीर पुरुषों को अपने साथ रख उस धन से यजमान यश प्राप्त करता है।

४. जिस यज्ञ की आप चारों दिशाओं से रक्षा करते हैं, जिससे राक्षस आदि हिंसा नहीं कर सकते, वही यज्ञ देवताओं को तृप्ति देने स्वर्ग जाता है।

५. हे अग्नि देव! आप दूसरे देवों के साथ इस यज्ञ में आइए, आप यज्ञ के होता, बुद्धि सम्पन्न, सत्यशील एवं परमकीर्ति वाले हैं।

६. हे अग्नि! आप यज्ञ में हवि देने वाले यजमान का जो कल्याण करते हैं , वह वास्तव में आपकी ही प्रसन्नता का साधन बनता है।

७. हे अग्नि! हम सच्चे हृदय से आप को रात-दिन नमस्कार करते हैं और प्रतिदिन आप के समीप आते हैं।

८. हे अग्नि! आप प्रकाशवान्, यज्ञ की रचना करने वाले और कर्मफल के द्योतक हैं, आप यज्ञशाला में बढ़ने वाले हैं।

९. हे अग्नि! जिस प्रकार पुत्र पिता को सरलता से पा लेता है, उसी प्रकार हम भी आप को सहज ही प्राप्त कर सकें। आप हमारा कल्याण करने के लिए हमारे समीप निवास करें।

8.3 आयुष्यसूक्त-

यो ब्रह्मा ब्रह्मण उज्जहार प्राणैः शिरः कृत्तिवासाः पिनाकी।
ईशानो देवः स न आयुर्दधातु तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन॥१॥
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्याद्रोचमानो घर्मरुचिर्य आगात्।
स मृत्युपाशानपनुद्य घोरानिहायुषेणो घृतमत्तु देवः॥२॥
ब्रह्मज्योतिर्ब्रह्मपत्नीषु गर्भं यमादधात् पुरुरूपं जयन्तम्।
सुवर्णरम्भग्रहमर्कमर्च्यं तमायुषे वर्धयामो घृतेन॥३॥
श्रियं लक्ष्मीमौबलामम्बिकां गां षष्ठीं च यामिन्द्रसेनेत्युदाहुः।
तां विद्यां ब्रह्मयोनिꣳ सरूपामिहायुषे तर्पयामो घृतेन॥४॥
दाक्षायण्यः सर्वयोन्यः स योन्यः सहस्रशो विश्वरूपा विरूपाः।
ससूनवः सपतयः सयूथ्या आयुषेणो घृतमिदं जुषन्ताम्॥५॥

दिव्या गणा बहुरूपाः पुराणा आयुश्छिदो नः प्रमथ्नन्तु वीरान्।
तेभ्यो जुहोमि बहुधा घृतेन मा नः प्रजाꣳ रीरिषो मोत वीरान्॥६॥
एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो बभूव भुवनस्य गोपाः।
यमप्येति भुवनꣳ साम्पराये स नो हविर्घृतमिहायुषेत्तु देवः॥७॥
वसून् रुद्रानादित्यान् मरुतोऽथ साध्यान् ऋभून् यक्षान् गन्धर्वाꣳश्च पितॄꣳश्च विश्वान्।
भृगून् सर्पाꣳश्चाङ्गिरसोऽथ सर्वान् घृतꣳ हुत्वा स्वायुष्या महयाम शश्वत्॥८॥
विष्णो त्वं नो अन्तमः शर्म यच्छ सहन्त्य।
प्रतेधारा मधुश्चुत उत्सं दुह्रते अक्षितम्॥९॥

8.4 अभिषेक मन्त्र-**पौराणिक अभिषेक-**

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथः तथा सङ्कर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयायते। आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथाशिवः। ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा॥
कीर्तिर्लक्ष्मीधृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः।बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिः कान्तिस्तुष्टिश्च मातरः॥
एतास्तामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः। आदित्यश्चन्द्रमा भौम बुध जीव सितार्कजाः॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुकेतुश्च तर्पिताः। देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च॥
देवपत्न्योद्रुमानागा द्यैत्याश्चाप्सरसां गणाः। अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदानदाः॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये। सहस्राक्षं शतधारं ऋषिभिः पावनं कृतम्॥
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते। भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः॥
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तऋषयो दधुः। यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यश्च मूर्धनि॥
ललाटे कर्णयो रक्ष्णोरापो निघ्नन्तु ते सदा। अमृताभिषेकोस्तु॥

वैदिक अभिषेक-

तत्र ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः॥ पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥18.36।।ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः॥ सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेभवत्सरित् ॥34।। ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसिवरुणस्यस्कम्भसर्जनीस्थोवरुणस्य ऽऋतसदन्यसिवरुणस्य ऽऋत सदनमासिवरुणस्यऽऋत

सदनमासीद।।39.4।। पुनन्तुमादेवजनाः पुनन्तुमनसाधियः÷।। पुनन्तुविश्वाभूतानिजातवेदःपुनीहिमा।।39.19।। ॐ देवस्यत्त्वासवितुः प्रसवेश्विनौर्बाहुभ्याम्पूष्णोहस्ताभ्याम्।। सरस्वत्यैवाचोयन्तुर्व्यत्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि॥37.18॥ ॐ देवस्यत्त्वासवितुः प्रसवेश्विनौर्बाहु-भ्याम्पूष्णोहस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसेब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यैभेषज्येन वीर्य्यायान्नाद्याभिषिञ्चामीन्द्रस्ये न्द्रियेणबलायश्रियैयशसेभिषिञ्चामि। ॐ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानिपरासुव।। यद्भद्रन्तन्नऽआसुव।।3.10।। ॐधामच्छदग्निरिन्द्रोब्रह्मादेवो बृहस्पतिः÷।। सचेतसोविश्श्वेदेवायज्ञम्प्रावन्तुनः शुभे॥76.18॥ ॐत्वँष्वविष्टुदाशुषो नृँपाहिः श्रृणुधीगिर÷॥ रक्षातोकमुतत्मना॥77.18॥ ॐ अन्नपतेन्नस्यनोदेह्य न मीवस्य शुष्मिणः÷॥ प्रप्यदातारन्तारिषऽऊर्ज्जन्नोधेहिद्विपदेचतुष्पदे॥83.11॥

ॐ द्रविणोदाविणसस्तुरस्यद्रविणोदाःसनरस्यमयसत्।। द्रविणोदावीरवतीमिषनोद्रावणोदारासतेदीर्घमिषिञ्चतिब्रह्मवैपलाशोब्रह्मणैवैनमेतदभिषिञ्चति। । औदुम्बरं भवति।। तेनस्वोभिषिञ्चत्यन्नंवाऽऊर्गुदुम्बरऽऊर्ग्वैस्वं यावद्वैपुरुषस्यस्वंभवतिनवैता

वदशनायतितेनोर्कस्वंतस्मादौ दुम्बरेपास्वोमषिञ्चति।। नैष्यग्रोधपादं भवति। तेनमित्रोराजन्योभिषिञ्चतिपद्भिर्वैन्यग्रोधः प्रतिष्ठितोमित्रेणवैराजन्यः प्रतिष्ठितस्तस्मान्नैष्यग्रोधपादेनमित्रोराजन्योभिषिञ्चति॥ आश्वत्थम्भवति।। तेनवैश्योभिषिश्वतिसयदेवादोश्वत्थोतिष्ठतऽइन्द्रोम तऽउपा मन्त्रयते तस्मादाश्वत्थेनवैश्योभिषिञ्चति।। यद्देवकल्पाञ्जुहोतिप्राणा वैकल्पाऽअमृतेनैवैनमेतदभिञ्चति॥ सर्वेषां वाऽएषवेदानाꣳसोयत्साम सर्वेषामेवैनमेतद्वेदानाꣳरसेनाभिषिञ्चति॥

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः÷ पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः÷ ॥ वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥36.17 ॥ ॐ यतोयतः समीहसे ततो नोऽअभयङ्कुरु॥ शन्नः÷ कुरु प्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः÷ ।।36.22।।सुशान्तिर्भवतु।। स्वस्थाने उपविश्य हस्ते जलं गृहीत्वा अभिषेककर्तृकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथोत्साहं दक्षिणां दास्ये तेन श्रीकर्माधीशः प्रीयताम्।

8.5 आशीर्वाद मन्त्र कण्ठस्थीकरण- आशीर्वाद-

ब्राह्मणों के हाथों में अक्षतों को प्रदान कर।

ॐ भुद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भुद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा७सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितँ्यदायुः ।।३॥ ॐदेवानाम्भद्रासुमतिर्ऋजूयतान्देवानाᳬ रातिभिनोनिवर्त्तताम्। देवानां सक्ख्यमुपसेदिमाव्वयन्देवानऽआयुःप्रतिरन्तु जीवसे।।15.24॥ ॐ दीर्घायुस्तऽओषधेखानितायस्म्मैच्चत्त्वाखनाम्म्यहम्।। अथोश्वन्दीर्भूत्त्वाश तवल्शाव्विरोहतात्।।100.12।।

ॐ द्रविणोदाः पिपीषतिजुहोतप्रचतिष्ठत॥ नेष्ट्रादृतुर्भिरिष्ष्यत।।22.26।। ऋक् ॐसवितापश्चात्सवितापुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सवितादरात्तात् ॥ सवितानः सुवतुसर्वतातिंसवितानोरासतांदीर्घमायुः।। ॐ सवितात्त्वासवानाᳬसुवतामग्निर्गृहपतीनाᳬ सोमोव्वनस्प्पतीनाम्॥ बृहस्प्पतिर्व्वाऽइन्द्रोऽञ्जैष्ट्यारुद्रः पशुभ्योमित्रः सत्त्योव्वरुणोधर्म्मपतीनाम्॥39.9॥ ॐनवोनवोभवतिजायमानोह्नां केतुरुषसमामेत्यग्रम्।। भागदेवेभ्योविदधात्यायन्प्रचन्द्रमर्मास्तिरतेदीर्घमायुः।।ॐनतद्रक्षाᳬ सिनपिशाचास्तरन्तिदेवानामोजः÷प्रथमजᳬ ह्येतत्। योबिभतिदाक्षायणᳬ हिरण्यᳬ सदेवेषुकृणुतेदीर्घमायुः समनुष्येषुकृणुतेदीर्ग्घमायु॥51.34॥

ॐउच्चादिविदक्षिणावन्तोऽअस्थुर्येऽअश्वदाःसहतेसूर्येण॥ हिरण्यदाऽअमृतत्वं भजन्तेवासोदाः सोमप्रतिरन्तऽआयुः।।8।।ॐ उच्चातेजातमन्धसोदिविसद् भूम्म्याददे।। उग्रᳬ शर्म्ममाहिश्श्रवः॥36.26॥

एषवस्तोमोमरुतऽइयङ्गी र्म्मान्दार्य्यस्यमान्यस्यकारोः ॥ एषायासीष्टतन्वेव्वयांव्विद्या मेषंवृजनंञ्जीरदानम्॥48॥ सहस्तोमाः सहछन्दसः॥ सहस्तोमाः सहछन्दसऽआवृतः÷ सहप्रमाऽऋषःय सप्सदेव्याः॥ पूर्व्वेषाम्पन्थामनुदृश्श्यधीराऽअन्वालेभिरेरत्थ्योन रश्म्मीन्॥ 49॥ आयुष्यंव्वर्च्चस्यः रायस्प्पोषमौद्भिदम्॥ इदᳬ हिरण्यंवश्चस्यञ्जैत्रायाविंशतादुमाम् ॥50॥ नतत् ॥ नतद्रक्षाᳬ सिनपिशाचास्तरन्तिदे वानामोजः÷प्रथमजᳬ ह्येतत् ॥ योबिभर्त्तिक्षायणः हिरण्यᳬ सदेवेषुकृणुतेदीर्ग्घमायुः समनुष्येषुकृणुतेर्ग्घमायुः÷।।51।। ॥ यदाबद्धन्दाक्षायणाहिरण्यᳬ शतानीकायसुमनस्यमानाः॥ तन्मऽआबद्-ध्नमिशतशारदायायुष्म्माञ्जरदष्टर्य्यथासम्॥52॥ उतनः÷॥ उतनोहिर्ब्बध्न्य÷शृणोत्त्वजऽएकपात्पृथिवीसमुद्रः॥

विश्वेदेवाऽअऋतावृधोहुवानास्तुतामन्त्रा ँकविशस्ताऽअवन्तु॥53॥ इमागिरः÷॥ इमागिरःऽआदित्येब्योः घृतस्नूः सनाद्राजब्योःजुह्वा जुहोमि।। शृणोतुमित्रोऽअर्य्यमा भगोनस्तुविजातोवरुणोदक्षोऽअ ँशः÷॥54॥ सप्तऽऋषयः ँप्रतिहिता ँ शरीरे सप्तरक्षन्तिसदमप्यमादम्॥ सप्तापः ँस्वपतोलोकमीमत्र जागृतोऽअस्वप्नजौसत्रसदौचदेवो॥55॥ वाचंविष्णु ँसरखती ँ सवितारश्चवाजिनं ँस्वाहा॥ 27॥ अग्नेऽअच्छादेहनं ँ प्रतिनं ँ सुमनाभव॥ प्रनोयच्छसहस्रजित्त्व ँ हिधनदाऽअसिस्वाहा॥ 28॥ प्रनः÷॥ प्रनोयच्छत्त्वर्य्यमा प्रपूषाप्रबृहस्पतिः÷॥ प्रवाग्देवीददातुनः ँस्वाहा॥29॥ देव स्यत्त्वा। सवितुः ँप्रसवेश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णोहस्ताब्याम्
सरस्वत्यैवाचोयन्तुर्य्यन्त्रियेदधामिबृहस्पेष्ट्रासाम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ।।30।।
इत्याशीर्वादः।

इकाईः 9 सूत्र एवं कारिका पाठ

9.1 संस्कारों के गृह्यसूत्रों के अन्तर्गत मूलसूत्र एवं कारिका पाठ कण्ठस्थीकरण

॥ पारस्कर गृह्यसूत्रीय कण्डिका ॥

। अन्नप्राशन कण्डिका। (पा. गृ.)

॥ अथ कर्णवेध कण्डिका ॥ (कात्यायन गृह्यसूत्रम्)

अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमें वा। पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु। पूर्वान्हे कुमारस्य मधुरं दत्वाप्राङ्मुखायोपविष्टाय दक्षिणं कर्णमभिमन्त्रयते-"भद्रङ्कर्णेभिरिति सव्यं" "वक्ष्यन्तीवेदितिच" । अथ भिन्द्यात्। ततो ब्राह्मण भोजनम्। इति कर्णवेधः॥

॥ अन्नप्राशनसंस्काराङ्ग कारिका ॥

सङ्गन्हवाक्यात् । अथ ग्रहसंस्था । तत्र वशिष्ठः -

शुभाशुभेषु त्रिधनायकेन्द्रत्रिकोणगेष्वायरिपुत्रिगेषु ।
अषष्ठरिःफाष्टगते हिमांशौ बाळानयुक्तिः शुभदा च तेषाम् ।
कुष्ठी लग्नगते सूर्ये क्षीणे चन्द्रे च भिक्षुकः ।
सत्रदः पूर्णचन्द्रे च कुजे पित्तरुजार्दितः ॥
बुधे ज्ञानी गुरौ भोगी दीर्घायुर्भाग्यवान् सिते ।
वातरोगः शनौ राहौ केतौ चान्नविवर्जितः ॥
सम्पूर्णेन्दूभयायाष्टम्योर्मध्येन्दुः पूर्णसंज्ञितः ।
विनष्टेन्दूभयाष्टम्योर्मध्येऽसौ क्षीणसंज्ञकः ॥

महेश्वर :-

सूर्य केन्द्रमृतिव्ययात्मजगते धर्मे च कुष्ठी भवेद्भौमें पित्तरुजान्वितोऽनिलरुजा युक्तस्तु सूर्यात्मजे ।
क्षीणे शीतकरे तु भैक्ष्यभुगिति प्रोक्तं च रिक्ते तिथौ सौम्ये ज्ञानयुतो विधौ मखकरः पूर्णे तु सत्रपदः ॥
गुरौ चिरायुर्भृगुजेऽथ भोगी कोणस्त्रिकोणाद्यससप्तसंस्थः।
बन्धुस्थितश्चान्नहरोऽथ षष्ठो मृत्यु स्थितो मृत्युकरःशशाङ्कः॥

कोणः शनिः। राजमार्तण्डः :-

लाभत्रिषष्ठभवनोपगतास्त्वसौम्याः सौम्यग्रहा नवमपञ्चमकण्टकस्याः।

लग्नेषु दैत्यसचिवज्ञबृहस्पतीनामन्नोपभोगकरणैर्विविधोपभोक्ता॥

अर्णवेऽपि :-

दशमस्थान्ग्रहान्सर्वान्वर्जयेन्मतिमान्नरः ।

अक्षप्राशनकार्येषु मृत्युक्लेश भयावहान् ।।

बुधशुक्रनजीवाः स्युव्ययलग्नायकेन्द्रगाः ।

शुभांशे शीतगौ मोक्तुर्दद्युरायुः श्रियं शुभम् ॥

इनः सूर्यः । "स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति" इति सूत्रम् । स्थालीपाकं चरुं यथाविधि श्रपवित्वाऽऽज्याभागौ हुत्वा द्वे आहुती वक्ष्यमाणैर्मन्त्रैजुहोति । "देवीं वाचमजनयन्तदेवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सानो मन्द्रेषमूर्जन्दुहाना धेनुवोगस्मानुसुष्टुतैतु स्वाहेति वाजो नो अद्येति च द्वितीया" मिति सूत्रम् । द्वे आहुती जुहोतीत्युक्तम् । तत्र "देवीं वाचमजनयन्त" इतिमन्त्रेणैकामाहुतिं जुहोति । ततश्च "देवीं वाच" मिति "वाजो नो अद्ये"ति च द्वाभ्यामृग्भ्यां द्वितीयामाहुतिं जुहोतीत्यर्थः । मन्त्रार्थः दैवीं देवसम्बन्धिनीं वाचं देवाः प्राणादिवायवः अजनयन्त उत्पादिवन्तः । ततस्तां दैवीं वाचं विश्वरूपाः नानारूपाः ऋषिमुनिब्राह्मणादयः पशवः संसरणत्वाद्वदन्ति । "पशुरेव स देवाना" मिति श्रुतेः । सा नोऽ- उपैतु सन्निहिताऽस्तु । किम्भूता मन्द्रा हर्षकरी । इषं रसंऊर्ज अन्नादि च दुहाना सुष्टुता शोभनैर्मन्त्रस्तुता । तत्र दृष्टान्तः- वत्सान्धेनुरिवेति । "स्थालीपाकस्य जुहोति प्राणेनान्नमशीय स्वाहाऽपानेन गन्धानशीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहेति" इति सूत्रम् । स्थालीपाकस्येवयवलक्षणा षष्ठी । स्थालीपाकस्य चरोः "प्राणेनानमशीय स्वाहे 'ति प्रतिमन्त्रं चतुर्भिर्मन्त्रैश्चतस्र आहुतीर्जुहोति । ततः स्विष्टकृदादि प्राशनान्तम् । मन्त्रार्थः - प्राणेन वायुना अन्नं अशीय अहं प्राप्नुयां लभेयम् । अपानेन वायुना गन्धान् परिमलान् लभेयम् । एवमग्रेऽपि योज्यम् । "प्राशनान्ते सर्वा- सनसान्सर्वमन्नमेंकतोद्धृत्वाथैनं प्राशयेत्तूष्णीं हन्तेति वा हन्तकार मनुष्या इति श्रुते:" रिति सूत्रम् । प्राशनान्ते कर्मणि सर्वान् रसान् मधु- राम्ललवणकटुतिक्तकषायादीन् सर्वमन्नं भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं चोष्यं पेयं चैकतः एकस्मिन्सुवर्णादिपात्रे उद्धृत्य अथैनं कुमारं तस्मादन्नाद्गृहीत्वा तूष्णीं प्राशयेत् । "हन्ते" ति वा मन्त्रेण प्राशयेत् ।

तथा च उक्तम् ।

भक्ष्यं भोज्यं तथा पेयं लेहां चोष्यं तथैव च ।

इति पञ्चविधं हृद्यं पथ्यं भूञ्जीत भूपतिः ॥

सौवर्णे राजते पात्रे रीतियन्त्रविधारिते ।

भोजयेन्मण्डलेशादीन्यथायोग्यप्रदेशतः॥

अथ भक्ष्यपदार्थमाह । भक्ष्यशब्देन पकान्नम् । तत्करणप्रकारमाह –

गोधूमाः क्षालिताः शुभ्राः शोषिता रविरश्मिभिः ।

घरट्टैश्चूर्णिताः श्लक्ष्णाश्चालन्या वितुषीकृताः ॥

गोधूमचूर्णकं श्लक्ष्यं किञ्चिद्घृतविमिश्रितम् ।

लवणेन च संयुक्तं क्षीरनीरेण पिण्डितम् ॥

सुमत्यां काष्ठपात्र्यां वा करस्फालैर्विमर्दयेत् ।

मर्द्दितं चिक्कणीभूतं गोलकान्परिकल्पयेत् ॥

स्नेहाभ्यक्तैः करतलैः शालिचूर्णैर्विरूक्षितान् ।

प्रसारयेद्गोलकांस्तान्करसञ्चारवर्त्तनैः ॥

विस्तृता मण्डकाः श्लक्ष्णाः सितपट्टसमप्रभाः ।

प्रसन्नान्निक्षिपेत्तज्ञप्रस्तप्तखर्परमस्तके ॥

पकाश्चापनयेच्छीघ्रं यावत्काष्ण्यं न जायते ।

चतस्त्रश्च चतस्त्रश्च घट्टिता मण्डका वराः ॥

। इति मण्डकाः ।

गोलान्प्रसारितान्पाणावङ्गारेषु विनिक्षिपेत् ।

अङ्गारपोलिकाःशस्ताःकिञ्चित्कृष्णत्वमागताः ।

गोलकान् पिष्टकालिप्तान्वेषण्या तान्प्रसारयेत्।

सुतप्ततावनिक्षिप्तानीषत्पकान्विवर्तयेत् ।

खर्परेऽपि पचेदेवं पोलिकानामयं क्रमः ।।

इति पोलिका ।

तैलपूर्णकटाहे तु सुतप्ते सोहलां पचेत् ।

उत्तानपाकसंसिद्धाः कठिनाः सोहला मताः ॥

सोहारीति प्रसिद्धा ।

तनुप्रसारितान्गोलान् ताप्यां स्नेहेन पाचितान् ।

दुग्धाक्तान्घृतपक्वांश्च सितयाश्च विमिश्रितान् ॥

एलामरिचचूर्णेन युक्तान्कासार संज्ञितान् ॥

इति कासारम् ।

गोलकेन समावेष्ट्य तैकेनौदुम्बरान्पचेत् ।

उत्क्वाथ्य द्विदलान्पिष्ट्वा चणकप्रकृतीञ्छुभान् ॥

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ताञ्छर्करा परिमिश्रितान् ।

मरिचैलादिचूर्णेन युक्तान्गोलकवेष्टितान् ॥

किञ्चित्प्रसारिते तैले पूरिका विपचेच्छुभाः।

एवं ताप्यां पचेदन्याः पूरिकाश्च विचक्षणाः ॥

हरिमन्थस्य विदलं हिङ्गुजीरकमिश्रितम् ।

लवणेन च संयुक्तमार्द्रकेन समन्वितम् ।

वेष्टयित्वा गोळकेन वेष्टिकाः खर्परे पचेत् ॥

इति बेढई ।

विदलं चणकस्यैव पूर्वसम्भारसंस्कृतम् ।

ताप्यां तैलविलिप्तायां घोसकान्विपचेद्बुधः ॥

इति पोसकः ।

माषस्य राजमाषस्य वट्टाणस्य च घोसकान ।

अनेनैव प्रकारेण विपचेत्पाकतत्ववित् ॥

वट्टाणकस्य विदलमथ वा चणकस्य च ।

चूर्णितं वारिणा सार्धं सर्पिषा परिभावितम् ॥

सैन्धवेन च संयुक्तं कण्डिन्या परिघट्टितम् ।

निष्पावचूर्णसंयुक्तं पेषण्यां च प्रसारितम् ।।

कटाहे तैलसम्पूर्णे कटकर्णान्प्रपाचयेत् ।

यावद्बुद्बुद्बुदसङ्काशा भवन्ति कनकत्विषः ॥

माषस्य विदलान्क्लिन्नान्निस्तुषान्हस्तलोडनैः ।

ततः सम्पेष्य पेषण्यां सम्भारेण विमिश्रितान् ॥

स्थाल्यां विमृद्य बहुशः स्थापयेत्तदहस्ततः ।

अम्लीभूतं माषपिष्टं विटिकासु विनिक्षिपेत् ॥

वस्त्रगर्भाभिरन्याभिः पिधाय परिपाचयेत् ।

अवतार्याथ मरिचं चूर्णितं विकिरेदनु ॥

घृताक्तं हिङ्गुसर्पिभ्यां जीरकेण च धूपयेत् ।

सुशीता धवकाः श्लक्ष्णा एता इन्दुरिका वराः ॥

तस्यैव माषपिष्टस्य गोलकान्विस्तृतान्धनान् ।

पञ्चभिः सप्तभिर्वापि च्छिद्रैश्च परिशोभितान्॥

तावत्तैलं पचेद्यावल्लौहित्यं तेषु जायते ।

घारिका संज्ञया ख्याता भक्ष्येषु सुमनोहराः ॥

इति घारिका ।

निच्छिद्रा घारिकाः पक्वा मथिते शर्करायुते ।

एलामरिचसंयुक्ते निक्षिप्ता वटकाभिधाः ॥

त एव वटकाः क्षिप्ताः काञ्जिके काञ्चिकाभिधाः ।

यत्र यत्र द्रवद्रव्ये तन्नाम्ना वटकास्तु॥

आरनालेन सान्द्रेण दहना सुमथितेन च ।

सैन्धवार्द्रकधान्याकजीरकं च विमिश्रयेत् ॥

मरिचानि द्विधा कृत्वा क्षिपेत्तत्र तु पाकवित् ।

दर्व्या विघट्टयन्सर्वं पचेद्यावद् घटी भवेत् ।

उत्तार्य वटकान्क्षिप्त्वा विकिरेन्मारिचं रजः ॥

हिङ्गुना धूपयेत्सम्यग्वटकास्तेमनाभिधाः ।

दुग्धमुत्काथ्य तन्मध्ये तक्रमम्लं विनिक्षिपेत् ।

हित्वा तोयं घनीभूत वस्त्रबद्धं पृथक्कृतम् ॥

शालितण्डुळपिष्टेन मिश्रितं परिपेषितम् ।

नानाकारैः सुघटितं सर्पिषः परिपाचितम् ॥

पक्वशर्करया सिक्तमेंलाचूर्णेन वासितम् ।

क्षीरप्रकारनामेंदं भक्ष्यं मृष्टं मनोहरम् ॥

इति भक्ष्याणि । अथ भोज्यान्याह – –

रक्तशालिर्महाशालिर्गन्धशालिःकलिङ्गकः।

सुगन्धो गन्धशाली स्यात्कलिङ्गस्थः कलिङ्गकः ॥

शुकशुन्यो मुण्डशालिः स्थूळशालिस्तदाकृतिः ।

सौक्ष्म्यातु सूक्ष्मशालिः स्याद्विपासः षाष्ठिकः स्मृतः ॥

एताञ्छाकीन्पृथक् सर्वान्मुसलौर्वितुषीकृतान् ।

निक्षिप्य तण्डुलान्पट्टे विसृजेत्कणकांस्ततः ॥

पाषाणमृत्तिकाशालीतृणपर्णतुषं तथा ।

यत्नाद्विकष्यापनयेद्दासीभिस्तण्डुलस्थितान् ॥

अखण्डाञ्छोधितानेव क्षालितान्बहुशस्तथा ।

तण्डुलान् कुन्दसंकाशांस्तोयान्तर्धारितांश्चिरम् ॥

स्थाल्यां ताम्रकृतायां वा मृज्जातायामथापि वा।

तण्डुळात्त्रिगुणं तोयं निक्षिपेच्च विधापयेत् ॥

वाससा शशिशुभ्रेण धौतेन च घनेन च ।

चुल्यां निधाय निर्धूमें वन्हौ तत्काथयेज्जलम् ॥

सुतप्ते बुद्बुदोपेते रसबाष्पसमन्विते ।

तण्डुलानावपेत्स्थाल्यां दर्व्यां च परिवृत्येत् ।।

सिक्थं विसृद्य वीक्षेत वारं वारं विचक्षणः ।

मृदुभूते च तत्सिक्थे किञ्चिद्वा कणगर्भिते ॥

तक्रं दुग्धं घृतं वापि निक्षिप्योच्चारयेत्ततः ।

स्वाल्यास्ये पीठकं दत्वा मण्डं संस्रावयेद्गुणैः ॥

ईषदुद्धरितं मण्डमुष्मण्या परिशोषयेत् ।

एवं भक्तं सुपक्वं यद्राजयोग्यं तदुत्तमम् ॥

इत्योदनम् ।

राजमुद्गास्तथा पीता निष्पावाश्चणका अपि ।

कृष्णाढक्यस्तथा माषा मसूरा राजमाषकाः ।।

सुपकर्मणि सप्तैते नियोज्याः सूपकारकैः ।

दलिताऽदलिताचैते पचनीया यथारुचि ॥

चणका राजमाषाश्च मसूरा माषमुद्गकाः ।

घरदैर्दलिताः कार्याः पाकार्थं हि विचक्षणैः ॥

किञ्चिद्भ्रष्टास्तथाढक्यो यन्त्रावर्त्ते द्विधाकृताः ।

विदलाश्च कृताः सम्यक् शूर्पकैर्वितुषीकृताः ।।

स्थाल्यां शीतोदकं क्षिप्त्वा बिदकैः सममानतः ।

आतपे विदलान्पश्चाच्चुल्यामारोपयेत्ततः ।।

मृद्वग्निपच्यमाने हि हिङ्गुतोयं विनिक्षिपेत् ।

वर्णार्थं रजनीचूर्णमीषत्तत्र नियोजयेत् ॥

मुहुर्मुहुः क्षिपेत्तोयं यावत्पाकस्य चूर्णता ।

सुश्लक्ष्णं सैन्धवं कृत्वा विंशत्यंशेन निक्षिपेत् ॥

वर्णतः स्वादुता गन्धो मार्द्दवाल्लाकघवादपि ।

एवं विदलपाकस्य सम्यक् सिद्धिरुदाहृता ॥

निष्पावा मेंचकाढक्यो हिङ्गुना परिवर्जिताः ।

अभिन्नाः पूर्ववत्पाक्या हरिद्राचूर्णकं विना ॥

मसूरमाषपाकेषु हिङ्गुतोयं विनिक्षिपेत् ।

इतरः पूर्ववत्कार्यः पाकः पाकविचक्षणैः ॥

प्रक्षालितान्वरान्मुद्रान्समताङ्ग विनिक्षिपेत्।

चुल्ल्यां मृद्वग्निना पाकः कर्तव्यः सूपकारकैः ॥

पच्यमानेषु मुद्रेषु हिङ्गुचारि विनिक्षिपेत् ।

आर्द्रकस्य च खण्डानि सूक्ष्माणि च विनिक्षिपेत्।

वार्ताकं पाटितं तैलं दृष्टं तत्र विनिक्षिपेत् ।

तैलभृष्टा मुद्गुता क्षिपेद्वा विसचक्रिकाः ॥

बीजकानि प्रियालस्य क्षिप्त्वा दर्व्या विवर्त्तयेत् ।

पुनः पुनः क्षिपेत्तोयं स्तोकं स्तोकं विचक्षणः ॥

इति भोज्यानि ।

अथ पेयवस्तून्याह -

गर्व्यं वा माहिषं वापि क्षीरं नीरविवर्जितम् ।

पचेत्स्थाल्यां मृदौ वह्नौ दर्वीघट्टनसंयुतम् ॥

अर्धावशेषं कुर्वीत त्रिभागेनावशेषितम् ।

षड्भागशेषितं वापि कुर्यादष्टावशेषकम् ॥

अर्धावशिष्टं येन स्स्यात्त्रिभागं लेह्यकं भवेत् ।

षड् भागं पिण्डतामेंति शर्करा स्यादथाष्टमें ॥

अर्धावशेषिते दुग्धे तक्रमीषद्विनिक्षिपेत् ।

नवस्थाल्यां न्यसेत्तन्तु निवाते स्थापये च तम् ॥

शर्करामिश्रितं वापि फलैर्वापि विमिश्रयेत् ।

यामषड्कौषितं क्षीरमम्लतां घनतां भजेत् ॥

दधीति नाम प्राप्नोति पथ्यं सृष्टं मनोहरम् ॥

इति दधि ।

हीनकाले तथा पथ्यं चिरकालेऽम्लता बहु ॥

मन्थानेन मथित्वा तन्नवनीतमथोद्धरेत् ।

निर्मलं मथितं मोक्तं उदास्वित्या जलार्धकम् ॥

पादान्तक्रमकोद्दिष्टं धूपितं हिङ्गुजीरकैः ।

आर्द्रकेन समायुक्तमेंला सैन्धवचूर्णितम् ॥

मथितं शर्करायुक्तमेंलाचूर्णविमिश्रितम् ।

कर्पूरधूपितं नाम्ना मज्जिकेत्यभिधीयते ॥

मग्जि इति कर्णाटकाः ।

निष्पीड्य दधि वस्त्रेण स्रावपेचद्रुतं जलम् ।

शर्करैलासमायुक्ता सूदैः शिखरिणी मता ।।

शिखरिणी दधिजा ।

स्रावितं यद्धृतं तोयं जीरकाद्रक सैन्धवैः ।

संयुक्तं हिङ्गुधूपेन धूपितं मस्तु कीर्त्तितम् ।।

नवनीत नवं धौतं नीरलेशविवर्जितम् ।

तापयेदग्निना सम्यङ्मृदुना घृतभाण्डके ॥

पाके सम्पूर्णतां याते क्षिपेद् गोधूमबीजकम् ।

क्षिपेत्ताम्बूलपत्रं च पश्चादुत्तारयेद्धृतम् ।।

तण्डुलक्षालनं तोयं चिञ्चाम्लेन विमिश्रितम् ।

ईत्तक्रेण संयुक्तं सितया सह योजितम् ॥

एलाचूर्णसमायुक्तमार्द्रकस्य रसेन च ।

धूपितं हिङ्गुना सम्यग्व्यञ्जनं परिकीर्तितम् ।।

सौवीरं निर्मलं साम्लं लवणेन च संयुतम् ।

हिङ्गुना जीरकेणापि धूपितं धूपकाञ्जिकम् ॥

शङ्कुद्वयं समास्थाप्य बध्नीयादुज्वकाम्बरम् ।

प्रसार्य षष्टिभिः किञ्चित्क्षीरमम्लेन मेंदितः ॥

सितया च समायुक्तमेंलाचूर्णविमिश्रितम् । क्षिपेत्प्रसारिते वस्त्रे स्रावयेत्प्रेषयेत्समम् ॥

पुनः पुनः क्षिपेचत्र यावन्निर्मलतां व्रजेत् ।

पक्वचिञ्चाफलं भृष्टं वर्णार्थं तत्र निक्षिपेत् ॥

यस्य यस्य फलस्यापि रसेन परिमिश्रितम् ।

तत्तन्नाम समाख्यातं पानकं पेयमुत्तमम् ॥

इति सर्व पेयसंज्ञकम् ।

अथ लेह्यमुच्यते- ।

श्यामाकं कङ्ग नीवारं गन्धशालिषु तण्डुकैः ।

कृसरास्थित सेवाकैर्दिव सैलघुविस्तृतैः ॥

चिरप्रसूतमहिषीपयसा पायसं पचेत् ।

पायसं लेहने योज्यं स्वादुगन्धमनोहरम् ।।

पक्वान्नं पायसं मध्ये शर्कराघृतमिश्रितम् ॥

इति लेह्यम् ।

अथ चोष्यमुच्यते । चोष्यशब्देन शाकादिकं ग्राह्यम् ।

यथा --

फलशाकं पत्रशाकं कन्दशाकं च मूलकम् ।

पुष्पशाकं शिम्बिशाकं पक्वापक्वविभेदतः ॥

लवणं मरिचं शुण्ठी जीरकं च विचूर्णितम् ।

कल्पयेद्विविधैः शाकैः सर्वसम्भारकोविदः ॥

वटकान्पर्यटान्हृद्यानङ्गारैः परिभर्जयेत् ।

आम्राम्रातकजम्बूश्च वीजपूराग्निमन्थकैः ॥

भल्लातागस्त्यकार्पासद्राक्षाभृङ्गकसल्लकैः ।

पुननर्वाऽमरी तीक्ष्णी अतसी सुरसाद्वयम् ॥

मरुकं तालपर्णी च भिण्डुकी मुण्डिका तथा ।

ब्राह्मी चैवाम्रपत्रा च कौकिलाक्षी कुसुम्भकम् ॥

अञ्जनं पद्मकोशश्च शेढकं च तथापरम् ।

सङ्गृह्य पल्लवानेषां मल्लिकाम्लेन मिश्रयेत् ॥

जम्बीराम्लेन दध्ना वा लवणेन च संयुतान् ।

श्रीफलं केतकं चिश्वा मेंषश्रृङ्गीसुगन्धिजम् ॥

कुटजं मरिचं पन्थ्या विषमुष्टिकशिम्बिजम् ।

एलारामठनीवारमेंथिकापर्पटं तथा ॥

अगस्त्यनन्दनं राजा मातुलिङ्गिकपाटलिः ।

कटं मटं कर्कटं च करीरं टेन्दुकं तथा॥

बेत्रकारीफलं चैव लवणाम्भसि निक्षिवेत् ।

चूतमाम्रातकं धात्री कुगीरी कर्कटा तथा ।।

कूष्माण्डं त्रपुसे द्राक्षा कर्कटा बृहतीद्वयम् ।

कोशातकी बीजपूरं निष्पावं करमर्दकम् ।।

जम्बीरनिम्बवार्ताकं कर्मरं लवणाम्भसि ।

अथ वा राजिकाचूर्णं सतैले लवणान्विते ।।

प्रक्षाल्य वृन्तसहितं फलम् चूतादिकं न्यसेत् ।

कारवेल्लं सपनसं कदलीफलमेंव च ।।

सतैले राजिकाचूर्णे निक्षिपेलवणोषिते ।

वंशाङ्कुरं लघु चक्रीं शतावर्यस्तथैव च ॥

पाताले टेटुकानां च प्ररोहान्क्षालितान्मृदून् ।

सलिले लवणोपेते तैले चापि सराजिके ।।

लवणेन समायुक्ते प्रक्षिपेदङ्कुरानिमान् ।

मार्गिणीमाईकं पेष्टुं करोरं वनमार्गिणीम् ॥

कर्पूरमार्गिणीमूलं तथैवाम्लहरिद्रकाम् ।

सूरणं मधु शिग्रु च तथा वण्टलकन्दकम् ॥

एतानि पूर्ववत्कृत्वा तैले वाऽपि विनिक्षिपेत् ॥

इति शाकादिकम् । एकतोद्धृत्येत्यत्र छान्दसः सन्धिः । मार्कण्डेयः-

देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गगतस्य च ।

अलङ्कृतस्य दातव्यं पत्रं पात्रे सकाञ्चनम् ॥

मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा ॥ इति ।

॥ अथ स्त्रीणामन्नप्राशनम् ॥

तत्र मनुः-

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ॥ इति ।

शौनकोऽपि -

इदं कर्म कुमार्याश्च सर्व कार्यममन्त्रकम् ॥ इति ।

आश्वलायनोऽपि --

जातकृत्यादि चूडान्तं स्त्रीणां कार्यममन्त्रकम् ।

हुतकृत्यं तु पुंवत्स्यास्त्रीणां चूडाकृतावपि ॥

हुतकृत्यं होमः स च पुंवत्स्यात्पुरुषसंस्कार इवेत्यर्थः । शूद्राणामपि भवतीत्युक्तं ग्रन्थादौ । ततो ब्राह्मणभोजनम् । ब्राह्मणेभ्यो भोजनं देय- मित्यर्थः । अन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनमिति पुनरुतिः काण्डसमाप्तिसूचनार्था ।

जन्मदिनात्सौरेण मानेन योऽब्दस्तदन्ते यदा जन्मर्क्षं भवति तदा वक्ष्यमाणविधिं कुर्यादित्यर्थः । अब्दान्ते वर्षान्त इति सामान्योपादानात्प्रत्यब्दान्तेकार्यम् ।

तथा च गर्गः -

यस्मिन्दिने सवितरि यन्नक्षत्रदिनं भवेत् ।

प्रत्यब्दान्ते च नक्षत्रे विधिं वक्ष्ये नृणां परम् ॥

येनायुर्वर्द्धते नित्यं बलं तेजः सुखं सदा ॥ इति ।

जन्मर्क्षेद्वैधे निर्णयमाह वृद्धगार्ग्यः –

एकमासे द्विजन्मर्क्षे प्रथमें जन्म चाचरेत् ।

तस्मिन्नक्षत्रखण्डे तु अन्त्यखण्डे समाचरेत् ॥

उदयव्यापि जन्मर्क्षे तस्माद्द्वन्तु जन्मनः ।

सङ्गवव्यापिखण्डर्क्षे तत्र जन्म वरं शुभम् ॥

जन्मतिथिकृत्यविधिश्च ब्रह्मपुराणे-

सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नानं मङ्गलवारिभिः ।

गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

जन्माक्षाद्यतिक्रमें तिथ्याद्याह नृसिंहः -

रिक्तापर्वाष्टमीश्चैव कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ।

शुभानां वारवर्गाश्च राशयश्च धनुर्विना ।।

श्रेष्ठा नेष्टास्तथा शेषा मकरो मध्यमो भवेत् ।

हस्तादिभूत नक्षत्राण्यजद्वित्र्युत्तराणि च ॥

वसुपौष्णादितीपुष्यवाजिभानि शुभानि तु ।

भूतं मूलम् । अजद्विः रोहिणीमृगशीर्षे शेष प्रसिद्धम् ।

शकुन्यादीनि विष्टिं च वर्ज्या योगाः शुभेतराः ॥

लग्ने सर्वे शुभाः श्रेष्ठास्तथा केन्द्रत्रिकोणयोः ।

चन्द्रः शुभप्रदो ज्ञेयो द्वादशाष्टमभाद्विना ।।

पापास्त्रिलाभषष्ठस्थाः शुभा वस्त्रस्य धारणे ।

उच्चमित्रस्ववर्गेषु शुभः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥

वस्त्रवाहनशस्त्रादि भूषणानि सुसम्पदः ।

सद्गुणस्थे निशानाथे कुर्यात्तच्छोभने दिने ।।

नद्यादिगमने चैव तथा देवादिदर्शने ।

शिशोर्लीला दिवान्यत्तु वस्त्रधारणवद्भवेत् ।।

अथेतिकर्तव्यतामाह । तत्र गर्गः -

पूर्व जन्मदिनाद्रात्रौ कृत्वा कौतुकबन्धनम् ।

कृत्वा शान्त्युदकं चैव प्राशयेच्चाभिषेचयेत् ॥

ग्रहशान्ति समाप्यैव नक्षत्राधिपपूजनम् ।

आयुष्यहोमं च कृत्वा दिगीशावर्चयेद्बुधः ॥

देवांश्च वैदिकान्विप्रान्गुरून्बन्धुसुहृज्जनान् ।

प्रणम्य पूजयेद्विद्वान्गन्धमाल्यानुलेपनैः ।।

नवाम्बरधरो भूत्वा युक्तस्रग्वस्त्रभूषणः ।

गुरुप्रणामं कृत्वा च राजा तु महिषीसखः ॥

राजेत्युपलक्षणम् । तेनान्येनापि कर्तव्यम् ।

अन्यानि पुण्यकर्माणि प्रकुर्वीत यथाविधि ।

पापं कर्म न कुर्वीत यस्माच्छतगुणं भवेत् ॥

॥ तथा च ब्रह्मपुराणे ॥

प्रतिसंवत्सरान्त्यर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिं परम् ।

पूर्वाह्णे चैव जन्मर्क्षे स्नात्वा नद्यां सुरोत्तम ! ॥

मध्वाज्यदधिसंयुक्ता दूर्वां मृत्युञ्जयेन तु ।

जुहुयाच्च सहस्रं वा अष्टाविंशतिमाहुतीः ॥

ततोऽपराह्णे सम्प्राप्ते कृत्वा कौतुकमङ्गलम् ।

ग्रहपूजां प्रकुर्वीत भक्षेत्राधिपपूजनम् ॥

आयुष्यहोमें कृत्वा च श्रोत्रियानथ भोजयेत् ॥

दत्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मितम्॥

वध्वा वा कटिसूत्रं च वस्त्रं च परिधायेत् ॥

ग्रहपूजा नवग्रहमखः । पूजने होमस्याप्युपलक्षणम् ।

तथा च शौनकः-

अथ स्वजन्मनक्षत्रे स्नातः शुक्लाम्बरो नृपः ।

कृतकौतुकबन्धश्च सर्वाभरणभूषितः ॥

नक्षत्रदेवता पूजां कुर्याद्गुरुसमन्वितः ।

आचार्येणैव होतव्यो होमः सर्वत्र भूपतेः ।।

स्थण्डिलाद्याज्यभागान्तं कृत्वा सर्वे यथाक्रमम्।

दूर्वा घृताक्ता जुहुयादष्टोत्तरशताहुतीः ॥

यद्देवताकं नक्षत्रं मन्त्रस्तद्दैवतः स्मृतः ।

ततः स्विष्टकृतं सर्वं होमशेषं समापयेत् ॥

गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैर्ब्राह्मणान्भोजयेन्नृपः ।

तस्मिन्नहनि सर्वत्र देवतायतनानि च ॥

यद्दुःखितान्सर्ववर्णान्मोचयेन्नृपतिस्ततः ।

द्विजान्सर्वानथाभ्यर्च्य तस्मिन्नहनि कारयेत् ॥

पूजयित्वा विधानेन पूजितव्यान्स्वबान्धवान् ।

न हिंस्यात्सर्वभूतानि तदहस्तु विशेषतः ॥

सर्व समाचरेद्राजा सुखी भवति सर्वदा ।। इति ।

॥ वीरमित्रोदये ॥

गुढदुग्ध तिलान्दधाऽजन्मग्रन्थेश्च बन्धनम् ।

जन्मग्रन्थिबन्धनं नाम वक्ष्यमाणगुग्गुक्तादिपञ्चद्रव्यार्थं पोटलिकायाहस्ते बन्धनम्

तान्येव द्रव्याण्याह-

गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थदूर्वांगोरोचनायुतम् ।

सम्पूज्य भानुविघ्नेशौ महर्षि प्रार्थयेदिदम् ॥

प्रार्थनामन्त्राँस्तु प्रयोगे वक्ष्यामि ।

मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत्प्रयतस्तथा ।

ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणि कृपं बलिम् ॥

प्रह्लादं च हनुमन्तं बिभीषणमथार्चयेत् ।

रामोऽत्र परशुरामः द्रौणिरश्वत्थामा ।

स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य सम्पूजयेन्नरः ॥

षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षे वर्षे पुनः पुनः ।

पूजा च प्रतिमास्वक्षतपुञ्जेषु शालिग्रामें जलपूर्णकलशे वा कार्या ।

तथा पद्मपुराणम् -

शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ।

तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश ॥ इति ।

जन्मदिने शनिभौमवारपाते तु विशेष उक्तो दीपिकायाम् --

कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिन भवेत् ।

अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥

तस्य सर्वौषधीस्नानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ।

सौरारयोर्दिने युक्ता देयाऽनृक्षे च काञ्चनम् ॥

अथ जन्मतिथौ निषिद्धानि । स्कन्दपुराणे -

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेंव च ।

आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥

वृद्धमनुः-

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

॥ अथ शिशुरक्षाविधानम् कारिका ॥

विधानपारिजाते कपिलसंहितायां-

शिशुसंरक्षणार्थाय शिशुग्रहनिवारिणीम्।

रक्षां सन्ध्यासु कुर्वीत निम्बसर्षपगृञ्जनैः ॥

फलीकरणसम्मिश्रैः करञ्जैरवलोकनम्।

वचां द्वारप्रदेशेषु बालग्रहविमुक्तये ॥

वासुदेवो जगन्नाथः पूतनामञ्जनो हरिः ।

रक्षतां त्वरितो बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ।।

कृष्ण रक्ष शिशुं शश्वन्मधुकैटभमर्दन ।

प्रातःसङ्गवमध्याह्नसायाह्नेषु च सन्ध्ययोः ॥

महानिधि सदा रक्ष कंसारिष्टनिषूदन ।

यक्षोरगपिशाचांश्च ग्रहान्मातृगणानपि ॥

बालग्रहान्विशेषेण च्छिन्धि च्छिन्धि महाभयात् ।

त्राहि त्राहि हरे नित्यं त्वद्रक्षारक्षितं शिशुम् ॥

इति भस्माभिमन्त्रयैव भूषयेत्तेन भस्मना ।

शिरो ललाटाद्यङ्गेषु रक्षां कुर्याद्यथाविधि ॥

मन्त्रसंरक्षणादेव शिशुः संवर्द्धतेऽन्यहम् ।

॥ कर्णवेधसंस्काराङ्ग कारिका ॥

॥ कारिकायाम् ॥

शिशोरजातदन्तस्यमातुरुत्सङ्गसर्पिणः ।

॥ वृद्धनारदः—

वृषभे मिथुने मीने कुलीरे कन्यकासु च ।

तुलाचापे तु कुर्वीत कर्णवेधं शुभावहं ॥

रन्ध्रारिव्ययगो नेष्टो गुरुः शेषेशु शोभनम् ।

सुतरन्ध्रगतः सौम्यो नेष्टः शेषेशु शोभनः ॥

सप्ताष्टमगतः शुक्रो न शुभोऽन्यत्र शोभनः ।

चन्द्रो द्वित्रिसुतस्त्रीषु धर्मकर्मगतः शुभः ।

त्रिषडायगताः सौम्याः शुभाः कर्णस्य वेधने ॥

कर्णवेधे त्रिलाभस्य क्रूरौ नेष्टौ शुभशुभौ ॥

स च रात्रौ न कार्यः- तथा च वसिष्ठः-

न कश्चिदिष्टोऽष्टमराशिसंस्थस्तिथिद्वयं वा यमसङ्ज्ञकं च ।

न तत्र कुर्याद्दिवसे विशेषाद्रात्रौ न कुर्यात्खलु कर्णवेधं ॥

अथ सूचीनिर्णयः तत्र बृहस्पतिः-

शातकुंभमयी सूची वेधने शोभनप्रदा ।

राजती वायसी वापि यथाविभवतः शुभाः ॥

स्मृतिमहार्णवे ताम्रीप्युक्तम् ।

शुक्लसूत्रसमायुक्तताम्रसूच्याथ वेधयेत् ।

अथ कर्णविशेषेण सूचीव्यवस्था ।

तत्र वीरमित्रोदये बृहस्पतिः -

सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः ।

शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टाङ्गुलात्मिका ॥

मध्यमाङ्गुलीमध्यमपर्वमितमङ्गुलं तेन प्रमाणेनाष्टाङ्गुलेत्यर्थ इति प्राञ्चः । तन्न अनक्षरार्थत्वात् । किन्तु मध्यमा चासावष्टाङ्गुलात्मिकेति सभ्योऽर्थः । मध्यमा नातिस्वल्पा नात्यधिकेत्यर्थः । अथेतिकर्तव्यता

विष्णुधर्मोत्तरे --

शिशोरेवाथ कर्तव्यं कर्णवेधं यथा श्रृणु ।

पूर्वाह्णे पूजनं कुर्यात्केशवस्य हरस्य च ॥

ब्रह्मणश्चन्द्र सूर्याभ्यां दिगीशानां तथैव च ।

नासत्ययोः सरस्वत्या ब्राह्मणानां गवां तथा ॥

अलङ्कृतं तदुत्सङ्गे बालं धृत्वा तु सान्त्विकम् ।

धृतस्य निश्चलं सम्यगलक्तकरसाङ्किते ॥

विध्येदेवं कृते च्छिद्रे सकृदेवात्र लाघवात् ।

प्राग्दक्षिणे कुमारस्य भिषग्वामें तु योषितः ।

शिशोर्विवर्धनं कार्यं यावदाभरणक्षमम् ।

कर्णवेध दिने विप्राः सांवत्सरचिकित्सकौ ॥

पूज्याश्चाविधवा नार्यः सुहृदश्च तथा द्विजाः ॥ इति॥

अथ कर्णक्षालनमाहज्योतिर्निबन्धे –

वेधात्तृतीय नक्षत्रे क्षालयेदुष्णवारिणा ॥इति॥

॥अत्र पुरुषकर्णरन्ध्रवृध्दिविषयेकर्णलक्षणमाह विषेशमाह देवलः॥

कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः ।

तंदृष्ट्वाविलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥

तस्मै श्राद्धं न दातव्यं यदि चेदासुरं भवेत्॥

॥अविध्दकर्णादिनिषेधमाह शालङ्कायनः॥

अविद्धकर्णैर्यद्भुक्तं लम्बकर्णैस्तथैव च ।

दग्धकर्णैस्तु यद्भुक्तं तद्वै रक्षांसि गच्छति ॥

॥ तत्प्रमाणमाह शङ्खगोभिलौ ॥

हनुमूला दधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्त्तितौ ।

द्व्यङ्गुलौ त्र्यङ्गुलौ शस्तौतेन शातातपोऽब्रवीत् ॥

॥ अथ साङ्गोपाङ्गसार्थपञ्चभूसंस्कारपूर्वकाग्निस्थापनम् तथा कुशकण्डिका प्रयोग एवं विधि कारिका च॥

अथ साधारणो विधिरुच्यते ।

तत्र पारस्करः- "परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय" इति सूत्रम् परिसमूहनं पांसूनामपसारणम् । तच्च सामर्थ्यात्पांसूपसारणयोग्यैर्दर्भादिभिर्यावत् स्वपसारणम्भवति तावत्कार्य्यम् । "प्राञ्चुदग्वा" इति कात्यायनपरिभाषातः प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा । एकदर्भेण वारत्रयमिति कारिकाकारः । त्रिभिर्दर्भैर्वारत्रयमेंव परिसमूहनमित्यन्ये । साधनान्तरानुक्तत्वात् हस्तेनैव वेदिं परिसमुह्य इत्यत्र श्री अनन्तः "अग्निं गुह्ये त्रिभिर्दर्भैः"।

॥ अथ परिसमूहनविधिः ॥

गृहीत्वा तु त्रयो दर्भाऽनामिकाङ्गुष्ठमेंव च ।

दक्षिणे चोत्तरे कुर्यात्परिसमूह इति स्मृतः ॥

भावार्थः- तीन दर्भ लेकर अनामिका एवं अंगुष्ठ से स्थण्डिल के दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा तक स्थंडिल को साफ करें।

॥ अथ परिसमूहनप्रयोजनम् ॥

कृमिकीटपतङ्गाद्या भ्रमन्ति वसुधातले ।

तेषां संरक्षणार्थाय कुर्यात्परिसमूहनम् ।।

॥ अथ उपलेपनविधिः ॥

'उपलिप्य' । उपलेपनं भूमेंरुद्वर्त्तनम् । तच्च गोमयेन। स्थण्डिलं गोमयेनोलिप्य "मण्डलं चतुरस्त्रं वाऽग्नि निर्मथ्याभिमुखं प्रणयेदिति" मैत्रानायणीयगृह्यात् ।

॥ अथ उपलेपनप्रयोजनम् ॥

पुरा इन्द्रेण वज्रेण हतो वृत्रो महासुरः ।

मेंदसा व्यापिता भूमिस्तदर्थनुपलेपनम् ॥

इदमपि वारत्रयम्भवतीति केचित् ।

॥ अथ उल्लेखनविधिः ॥

'उल्लिख्य' उल्लेखनं रेखाकरणम् । तच्च स्फ्येन । "अथ स्फ्यमादाय परिलिखति व्वजो वै स्फ्यो व्वज्रेणैव तत्परिलिखति त्रिःकृत्वः परिलिखति" इति श्रुतेः । "स्फ्येनान्तर्लिखितितप्तायनीति प्रतिमन्त्रमिति" कात्यायनसूत्रात् ।

अन्ये तु -

खादिरं स्फ्यं प्रकल्प्याऽथ तिस्रो लेखाश्च पञ्च वा ।

स्थण्डिलोल्लेखनङ्कुर्यात्स्रुवेन च कुशेन वा ॥ इति वासनाभाष्यधृतवचनात्।

रेखाश्च प्राक्संस्था उदक्संस्था वा कुण्डायामपरिमिताः प्रागग्रा उदग्ग्रा वा तिस्रः कार्याः

॥ अथ उल्लेखनप्रयोजनम् ॥

त्रीणि पञ्चाथ वा रेखा न भिद्यन्ते कदाचन ।

रेखा रेखाभिर्भिद्यन्ते तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ १ ॥

प्रथमा दक्षिणा रेखा द्वितीया मध्यमा भवेत् ॥

उत्तरा च तृतीया स्यात्र्युल्लिख्यैवं सदा बुधैः ॥ २ ॥

वायुपुराणे—

कण्डनं पेषणं चैव तथैवोल्लेखनक्रिया ।

सकृदेव पितृणां स्याद्देवतानां त्रिरुच्यते ॥

वसुन्धरा यदा सृष्टा हीना वा यदि वा ममा ।

ततः समात्समः कुर्याच्छेषोद्धृत्य बहिः प्लुतः ॥ इति ॥

॥ अथ उद्धरणविधिस्तदावश्यकता च ॥

'उद्धृत्य' उद्धरणं रेखातः पांसुनामुद्धापनम् । तच्चोल्लेखनक्रमेंणानामिकाङ्गुष्ठाभ्याङ्कर्तव्यम् इति साम्प्रदायिकाः ।

अङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वाभ्यामुद्धरेत्पांसुमेंव हि ॥

पांसुयुक्ता तु पूर्वेण त्यक्त्वा दारा धनं तथा ।

विचरन्ति पिशाचा ये आकाशस्थाः सुखासिनः ।

तेभ्यः संरक्षणार्थाय उद्धृत्य चैव कारयेत् ॥

॥ अथ अभ्युक्षणविधिः ॥

'अभ्युक्ष्य' अभ्युक्षणं सेचनम । तच्च अद्भिः ।

गङ्गादिसर्वतीर्थेषु समुद्रेषु सरित्सु च ।

सर्वतश्चाप आदाय अभ्युक्ष्य च पुनः पुनः ॥

अभ्युक्षणञ्च न्युब्जेन हस्तेन कार्यमित्याह वर्द्धमानादिधृतपरिशिष्टान्तरं वचनम् --

उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षणं समुदाहृतम् ।

तिरश्चावेक्षणं प्रोक्तं नीचेनाभ्युक्षणं स्मृतम् ॥

प्रोक्ष्यमुद्राविहीनस्तु प्रोक्षणङ्कुरुते यदि ।

तत्तोयं रुधिरं ज्ञेयं तत्पात्रमशुचि भवेत्

त्रिरुल्लेखनं त्रिरुद्धरणमिति हरिहरः। परिसमूहनादि पञ्चापित्रिस्त्रिरित्यन्ये । कर्कोपाध्यायैरपि दैवे परिसमूहनादि त्रिस्त्रिः पित्र्ये सकृत् इत्युक्तम् । परिसमूहनादयः पञ्च पदार्था भूमिशुद्ध्यर्था इति केचित् । तदयुक्तम् । नह्यशुद्धदेशे अग्नेः स्थापनप्रवृत्तिर्युक्ता इति। तस्मादग्न्यर्था इति युक्तम् । यत्र यत्राग्नेः स्थापनं तत्र तत्र एते कर्त्तव्याः। न च गृह्यस्थालीपाकादिकर्मान्तर्भाव एषाम्, येन "एष एव विधिर्यत्र कचिद्धोम" इतिसूत्रम् (पा.गृ.) अभिहितेऽपि पुनरभिधीयते "उद्धृतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधायेति"सूत्रम् (पा.गृ.) नुनम् अनेनाप्रवृत्तिः । तस्मादग्न्यर्था एवेति । तथा च लिङ्गम् "उद्धृतावोक्षिते ग्निमुपसमादधीतेति"। प्रयोजनं स्वस्थानस्थित एवाग्नौ क्रियमाणे स्थालीपाकादौ न क्रियन्ते "अग्निमुपसमाधाय" इति सुत्रम् (पा.गृ.) । उप समीपवर्त्तिनि उक्तसंस्कारसंस्कृते देशे कांस्यादिना सम्यक् प्रकारेण, अग्नेः अभिमुखं यथा भवति तथा स्थापयित्वेत्यर्थः ।

॥ अथ अग्निप्रणयनम् ॥

उक्तम् गृह्यसंग्रहे ॥

शुभं पात्रन्तु कांस्यस्य तेनाग्नि प्रणयेद्बुधः ॥

तस्याभावे शरावेण नवेनाभिमुखेन तम् । इति ।।

तथा च अग्निगुह्ये --

पात्रद्वये न्यसद्वह्निं सम्पुटे धारयेत्करैः ।

प्रणीता दक्षिणे हस्ते वामहस्ते च प्रोक्षणीः ॥

सुवासिन्याऽऽनयेद्वह्निं सम्पुटे पात्रयोमृदः ।

विन्यस्याभिमुखं स्वस्य निक्षिपेत्कुण्डमध्यतः ॥

॥ अथ ब्रह्मोपवेशनम् तस्य अर्थवादःएवं ब्रह्मणा दक्षिणावस्थान प्रयोजनम् ॥

"दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य" इति सूत्रम् (पा.गृ.) । अग्नेरुपास्थितत्वाद्दक्षिणतः । ननु "दक्षिणतो ब्रह्मयजमानयोरासने" इति परिभाषतो दक्षिणत आसनं प्राप्तं किमर्थं पुनर्दक्षिणग्रहणम् ? सत्यमुच्यते । पुनर्दक्षिणग्रहणं यजमानस्य तत्रासनं माभूत् इत्येतदर्थम् इत्यदोषः । आसनमात्रं स्यान्न ब्रह्मा आस्तरणमात्रोपदेशात्, क्वचिच्च "दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्य" इति। नैतत । अदृष्टप्रसङ्गात । नह्यदृष्टाय कश्चिदासनप्रकल्पनं कुर्वीत, ब्रह्मासनव्यपदेशानुपपत्तेश्च । तस्माद्दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्येति हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र स्पष्टतरम् । सर्वसाधारणेतिकर्त्तव्यतासु ब्रह्मोपवेशनस्योक्तत्वात् । तद्यथा "ब्रह्मा यज्ञोपवीतङ्कृत्वाऽऽचम्यापरेणाग्निं दक्षिणातिक्रम्य ब्रह्मासनात्तृणं निरस्याप उपस्पृश्याग्निमभिमुख उपविशतीति" । ब्रह्मण उपवेशनार्थमासनं ब्रह्मासनम् वारुणदारुनिर्मितं पीठम् आस्तीर्य्य आच्छाद्य, सामर्थ्यात्कुशैः । अन्ये तु आसनं तृणमयम् । अन्यत्रासनात्तृणनिरसनदर्शनादित्याहुः ।

तथा चोक्तम अग्निगुह्ये -

ब्रह्माचार्यप्रणीतानामासनञ्च त्रिभिः कुशैः ।

न द्वाभ्यां नैकदर्भेण ऋषयो बहवो विदुः ॥

उत्तरे सर्वपात्राणि उत्तरे सर्वदेवताः ।

उत्तरे प्रणीता यास्ताः किमर्थं ब्रह्म दक्षिणे ॥

यमो वैवस्वतो राजा वसते दक्षिणा दिशि ।

तस्य संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे ॥

॥ अथ कौशब्रह्मानिर्माणविचारःपरिमाणञ्च ॥

हरिहरेण तु अत्रैव ब्रह्मवरणमुक्तम् । अग्नेरुत्तरतः स्वशाखिनं प्राङ्मुखमासीनं स्वयमुदङ्मुख आसीनः सम्पूज्य वृत्वा उपवेश्य तदभावे पञ्चाशत्कुशनिर्मितम् ।

उक्तञ्च विधानपारिजातके - -

पञ्चाशत्कुशको ब्रह्मा तदर्द्धेन तु विष्टरः ।

ऊर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः ॥

दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामावर्त्तस्तु विष्टरः ॥

॥ अथ प्रणीतालक्षणम्॥

"प्रणीय" इति सूत्रम् (पा.गृ.) । अप इति शेषः । तद्यथा अग्नेरुत्तरतः प्रागग्रं कुशैरासनद्वयं कल्पयित्वा चमसं सव्यहस्ते कृत्वा दक्षिणोद्धृतपात्रस्योदकेन पूरयित्वा पश्चिमासने निधाय उपालभ्य पूर्वासने स्थापयति । प्रणीतालक्षणन्तु पाकयज्ञप्रदीपे यज्ञपार्श्वोक्तम् -

॥ अथ चमसलक्षणम्॥

चमसानान्तु वक्ष्यामि दण्डाः स्युश्चतुरङ्गुलाः ।

त्र्यङ्गुलन्तु भवेत्खातं विस्तारैश्चतुरङ्गुलम् ॥

विकङ्कतमयाः श्लक्ष्णास्त्वग्बिलाश्चमसाः स्मृताः ।

अन्येभ्यो वाऽपि कार्याः स्युस्तेषां दण्डेषु लक्षणम् ॥ इति चमसलक्षणं सौमिकचमसस्येव इति न विरोधः । चतुरङ्गुलखातमिति हरिहरः । प्रणीतापूरणं मध्यमातर्जन्यङ्गुष्ठाये ।

॥ अथ प्रणीतापात्रलक्षणम् तत्पूरणञ्च॥

नो भूमौ नैव हस्ते च न काष्ठोपरि संस्थितिः ।

उदकं पूरयेत्तत्र आकाशवति संस्थिते ।।

तच्च आकाशवल्लक्षणमाह अग्निगुह्ये-

मध्यमा तर्जनीयुक्ता अंगुष्ठेन समर्पिता ।

आकाशसहिता ख्याता प्रणीता पूरणं भवेत् ॥ इति

अन्यच्च-

सांगुष्ठे चाङ्गुलित्रीणि प्रणीता सव्यहस्तके ।

पूरयेद्दक्षिणा धारा आकाशे शब्दतन्मतम् ॥

सरत्नि: स्यादरनिस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना ।

कुण्डस्योत्तर दिग्भागे प्रणीतास्थापनं भवेत् ॥ इति ।

एवं सव्यहस्तेन पात्रं गृहीत्वा दक्षिणेन पूरणम् पश्चिमासने निधानम् पात्रालम्भःपूर्वासने निधानं भवति॥

॥ अथ परिस्तरण विधिः॥

"परिस्तीर्य" इति सूत्रम् (पा.गृ.) । परिस्तरणञ्च कुशैरग्नेः समन्तादाच्छादनम् ।

उक्तञ्च कात्यायनेन श्रोतसूत्रे **"तृणैरग्नीन्परिस्तीर्य्य पुरस्तात्प्रथमम्" इति।**

तृणशब्देन बर्हिरुच्यते बर्हिः शब्देन कुशा एवोच्यन्ते । **"कौशं बर्हि" रिति तेनैव परिभाषणात् ।**

पुरस्तात्पथमम् । तच्च पूर्वस्यां दिशि प्रथमङ्कर्त्तव्यम् । एवञ्च **"आवृत्तिसामन्तेषु प्रदक्षिणम्"**

इतिसूत्रबोधितप्रादक्षिण्यानुग्रहाय ईशानकोणादारभ्य प्रागग्रैः कुशैः परिस्तरणं भवति ।

उक्तञ्च अग्निगुह्ये-

ईशान्यादिषु पूर्वाग्रैः कुशैः सव्यं परिस्तरः । इति ।

स्मृत्यन्तरे-

यज्ञवास्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भवटौ तथा ।

दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ इति ॥

अग्निगुह्ये -

वह्नितस्तु परित्यज्य द्वादशाङ्गुलतो बहिः ।

परिस्तरणदर्भास्तु षोडश द्वादशापि वा ॥

॥ अथपात्रासादनम् ॥

"अर्थवदासाद्य" इति सूत्रम् (पा.गृ.) । अर्थः नाम प्रयोजनम् । ननु अत्र "अर्थ प्रसंख्यया द्रव्योपकल्पनम्" इति कात्यायनपरिभाषातः। प्राप्नोत्येवासादनम् किमर्थम्पुनरिदं सूत्रम् ? इति चेत् न । "श्रपणस्य पश्चादुत्तरतो वा।" इति कात्यायनस्य देशविशेषद्वंद्वतादिविशिष्टबोधनार्थत्वेनाऽस्य सार्थकत्वात् । एतच्च आसादनं विनियोगक्रमेंणतदाऽऽह च्छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः-

प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः ।

तत्तथा सादयेत्पात्रं यद्यथा विनियुज्यते ॥ इति ॥

प्राञ्चं प्राञ्चमिति पुंस्त्वमार्षम्। विशिष्टो नियोगो विनियोगः मुख्यः प्रयोग इति यावत् । तथा च यत्कार्यार्थं यत्पात्रमुपादीयते तत्कार्यक्रमेंण तस्यासादनम् ।

कारिकायाम्--

पश्चादुत्तरतो वा स्यात्पात्रासादनमग्नितः ।

उत्तरे चेदुदक्संस्थं प्राक्संस्थं पश्चिमें भवेत् ॥

प्राग्बिलान्युदगग्राणि प्राक्संस्थान्यग्रितो यदि ।

प्रागग्रोदग्बिलान्यग्रेरुदक्संस्थानि चैव हि ॥

अग्निगुह्ये—

आसादमति पात्राणि प्रादेशे करके बुधैः ।

अङ्गुलित्रिप्रमाणेन पात्रत्रान्तरे स्थितिः ॥

दर्भास्त्रयः पवित्रे द्वे प्रोक्षणीपात्रमुत्तमम् ।

आज्यस्थाली चरुस्थाली संमार्गोपयमौ कुशौ ॥

पालाश्यः समिधस्तिस्रः स्रुव आज्यं गवेधुका।

तण्डुलान्पूर्णपात्रञ्च दक्षिणाऽथ वरोऽथ वा ॥

एतच्च विपुलस्थानसम्भवे, असम्भवे तु कात्यायनोक्तम्—

प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः । इति देवयाज्ञिकाः ।

॥अथ पवित्रीकरणविधिः॥

"पवित्रे कृत्वा" इति सूत्रम् (पा.गृ.) । प्रथमै स्त्रिभिः कुशरणैरग्रतः प्रादेशमात्रं विहाय द्वे कुशतरुणे प्रच्छिय "कुशौ समावप्रशीर्णाग्रावनन्तर्गर्भौ कुशैश्छिनत्ति" इति कात्यायनसूत्रम् । **अत्र कुशाविति कुशतरुणे उच्येते । तथा च "कुशतरुणे अविषमें अवि च्छिणाग्रे अनन्तर्गर्भे प्रादेशेन मापयित्वा कुशेन च्छिनत्ति" इति** शाङ्खायनः

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेंव च ।

प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥ इति **॥छन्दोगपरिशिष्टे ॥**

पवित्रे द्वे त्रीणि वा इति विकल्पः तथा च श्रुतिः "अथो पवित्रा स्युर्वा नो हि तृतीयो द्वे त्वेव" ॥अथ प्रोक्षणीपात्रलक्षणम्॥

प्रोक्षणीपात्रलक्षणमाह प्रोक्षणीपात्रं वारणं द्वादशाङ्गुलदीर्घं करतलमितखातं पद्मपत्राकृति कमलमुकुलाकृति वा भवतीति हरिहरादयः ।

कारिकाकारस्तु—

वैकङ्कतं पाणिमात्रं प्रोक्षणीपात्रमुच्यते ।

हंसवक्रमसेकञ्च त्वग्बिलं चतुरङ्गुलम् ॥

दण्डस्तस्य प्रणीतानां स्वादप्यङ्गुष्ठमात्रतः । इति ।

यज्ञपार्श्वे तु-

अश्वत्थदलवत्प्रोक्तं दीर्घं स्याद्वादशाङ्गुलम् ।

पूर्णपात्रं तथा कुर्यात्प्रोक्षणीनाञ्चपात्रकम् ॥ इति ॥

॥ अथ आज्यस्थालीलक्षणम् तत्प्रमाणञ्च॥

आज्यस्थाल्याः स्वरूपमाह च्छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः –

आज्यस्थाली प्रकर्त्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा ।

महीमयी वा कर्त्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥

आज्यस्थाल्या: प्रमाणन्तु यथाकामन्तु कारयेत् ।

सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थाली प्रचक्षते ॥ तैजसे सुवर्णादि ।

॥ अथचरुस्थालीलक्षणम् तत्प्रमाणञ्च॥

चरुस्थालीप्रमाणमाह स एव –

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्री दृढाऽनतिबृहन्मुखी ।

मृन्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रचक्ष्यते ॥ इति ॥

हरिहरकारिकाकारादयस्तु द्वादशाङ्गुलबिला प्रादेशा आज्यस्थाली चरुस्थाली च भवति इत्याहुः ।

॥ अथ समिल्लक्षणम्॥

समिधो लक्षणमाह ब्रह्मपुराणे –

पालाशाश्वत्थन्यग्रोधप्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः ।

वेतसौदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनं सरलस्तथा ॥

शालश्च देवदारुश्च खादिरश्चेति याज्ञिकाः ।

मरीचिः-

विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्राः ससुषिराः कृशाः ।

दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशकाः ॥

गृह्यसङ्ग्रहेऽपि-स्

प्रागग्राः समिधो देयास्ताच काम्येष्वपाटिताः ।

शान्त्यर्थेषु सवल्कार्दा विपरीता जिघांसताः ॥ इति ॥

परिशिष्टान्तरेऽपि –

समित्पवित्रं वेदश्च त्रयं प्रादेशसम्मितम् ।

इध्मस्तु द्विगुणः कार्यत्रिगुणः परिधिः स्मृतः ।

॥ अथ स्रुवलक्षणम् तत्प्रमाणञ्च ॥

अथ स्रुवलक्षणमाह कात्यायनः –

"अरत्निमात्रः स्रुवोऽङ्गुष्ठपर्ववृत्तपुष्करः" । इति ।

अङ्गुष्ठपर्वणा तुल्यं वृत्तं पुष्करं यस्य सोऽङ्गुष्ठपर्ववृत्तपुष्कर इति । तञ्च खादिरं **"खादिरः खुवः स्फ्यश्चेति"** तेनैवोक्तत्वात् । स्फ्योऽपि खादिरः खड्गाकृतिः । शेषं स्पष्टम् ।

॥ तत्र पात्रप्रोक्षणम् ॥

"प्रोक्षणीः संस्कृत्य"इति सूत्रम् (पा.गृ.)। प्रोक्षणीपात्रं प्रणितासन्निधौ निधाय तत्र पात्रान्तरेण हस्तेन वा प्रणीतोदकमासिच्य पवित्राभ्यामुत्पूय पवित्रे प्रोक्षणीषु निघाय दक्षिणेन प्रोक्षणीपात्रमुत्थाप्य सव्ये कृत्वा तदुदकं दक्षिणनोत्थाप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्ष्य । तथा च **कात्यायनसूत्रम् "हविग्रहण्यामपः कृत्वा ताभ्यामुत्पुनाति सवितुर्व इति ताः स्थानं तयोः सव्ये कृत्वा दक्षिणेनोदिङ्गयति देवीराप इति प्रोक्षितास्थेति तासां प्रोक्षणामिति"।**

अस्यार्थः

यस्यां हविर्ग्रहणमाम्नातं सा हविर्ग्रहणी सुक् अग्निहोत्रहवणी इति यावत्, तस्यामपः कृत्वा ताभ्यां पवित्राभ्यामुत्पुनाति उत्पवनङ्करोति उत्क्षिपति इति यावत् । ताः स्थानं तयोः, ताः प्रोक्षण्य चापः तयोः पवित्रयोः स्थानं निधानस्थलम् । सव्ये कृत्वा सव्यहस्ते ताः पात्रे स्थिताः प्रोक्षणीः स्थापयित्वा दक्षिणेनोदिङ्गयति दक्षिणहस्तेनोर्ध्वं गमयति । तासाम्प्रोक्षणम् प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीनां प्रोक्षणम् । **"अर्थवत्प्रोक्ष्य" इति सूत्रम् (पा.गृ.)** । अर्थवत्प्रयोजनवत् तज्जलेन यथासादितानाम्पात्राणाम् प्रत्येकम्प्रोक्षणम् । इदम्प्रोक्षणमुक्तमुत्तानहस्तेन इत्युक्तं प्रागभ्युक्षणप्रसङ्गे । न चैवं तण्डुलानामपि

प्रत्येकम्प्रोक्षणं स्यादिति वाच्यम् । अर्थवत्प्रोक्ष्येत्यनेन प्रयोजनवतः प्रोक्षणविधानात्, न च तण्डुलानाम्प्रत्येकं प्रयोजनमस्ति समुदितानामेंव प्रयोजनवत्त्वात् । एवञ्च तिसृणां समिधामपि न प्रत्येकं प्रोक्षणम् । अग्निसमिन्धनरूपकार्योपयोगित्वात् । अत एव श्रौते कपालानां परिधीनां च न प्रत्येकं प्रोक्षणम् इति । आर्थिकञ्च प्रोक्षणीनां निधानम् प्रणीताग्न्योरन्तरालरूपे असञ्चरे भवति, श्रौते तथा दृष्टत्वात् ।

॥ असञ्चरस्थानम् ॥

उक्तञ्च अभिगुह्ये –

तेन दर्भद्वयेनैव सपवित्रकरेण च।

क्रमात्पात्रगणं प्रोक्ष्य मोक्षणीपात्रवारिणा ।

निदध्यात्प्रोक्षणीपात्रं सपवित्रं समाचरेत् ।

अनन्तरं प्रणीताग्न्योरसञ्चरस्तु स स्मृतः इति॥

"निरुप्याज्यम्" इति सूत्रम् (पा.गृ.) । आसादितमाज्यं आज्यस्थाल्यां पश्चा दग्नेर्निहितायां प्रक्षिप्य, चरुश्चेच्चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकमासिच्य आसादिततण्डुलान्प्रक्षिप्य । एवञ्चर्वादीनामाज्यनिर्वापोत्तरं निर्वापस्यैवाप्रामाणिकत्वात् चरुपात्रे प्रणीतोदकमासिञ्च्य तण्डुलप्रक्षेप इति प्रकारविशेषकथनन्त्वसंगतमेंवेति चेत् न । **"पवित्रान्तर्हितेऽप आनीय तण्डुलानोप्य मेंक्षणेन पर्यायुवन् जीवतण्डुलं श्रपयति" इति मैत्रगृह्ये, गृह्यान्तर--ऽप्याज्यनिर्वापाद्युत्तरमेंव सधर्मकचरुनिर्वापादिदर्शनात् ।** **"अधिश्रित्य" इति सूत्रम् (पा.गृ.)**। अधिश्रयणम् अग्नौ स्थापनम् । तत्र आज्यं ब्रह्मा अधिश्रयति । तदुत्तरतः स्वयं चरुमेंव युगपदग्नावारोप्य। अत्र आज्यचर्वोर्युगपदधिश्रयणं, दर्शपौर्णमासयोस्तथा दृष्टत्वात्। न च तत्रापि सूत्रकारेण स्पष्टतयाऽनुक्तत्वात् कथमेंवमिति वाच्यम् । **"तद्वा एतदुभयं सह क्रियते तद्यदेतदुभयंसह क्रियतेऽर्द्धो हि वा एष आत्मनो यज्ञस्य यदाज्यमर्द्धो यदिह भवति स यश्चासावर्द्धो य उ चायमर्द्धस्ता उभावग्निं गमयावेति तस्माद्वा एतदुभयं सह क्रियते" इति श्रुतेः। सूत्रकारस्यापि तत्र तात्पर्यकल्पनात् । "पर्यग्नि कुर्यात्" इति सूत्रम् (पा.गृ.)। आज्यमित्यनुवर्तते । अधिश्रितस्याज्यस्य परितः अग्निङ्कुर्यात् इति तात्पर्यम् । पर्य्यग्निकरणम् परितः उल्मुकभ्रमणं न तु परितः अग्निस्थापनम् । अत्र "निरुप्याज्य मधिश्रित्य पर्य्यग्नि कुर्य्यात्" इति सूत्रस्थमाज्यपदञ्चर्वादीनामुपलक्षणार्थम् । एवं चर्वादीनामपि निर्वापाधिश्रयणपर्य्यग्निकरणानि भवन्ति । अत्र नियते सामान्यतः प्रतिनिधिः स्यात्" इति सूत्रात्**

मुख्यद्रव्याभावे तत्सदृशं प्रतिनिधेयम् । तत्र मुख्यं द्रव्यं गव्यमाज्यं व्रीहियेयवाश्च । तत्र घृतमात्राभावे प्रतिनिधिग्राह्यः ।

तदाह मण्डनः

॥ तत्र घृताभावे प्रतिनिधि ॥

घृताभावे भरद्वाजवौधायनमुनी पृथक् ।

आहतुः सूत्रबौधायनोक्तमादौ वदिष्यते ॥

घृतार्थे गोघृतङ्ग्राह्यं तदभावे तु माहिषम् ।

आजं वा तदभावे तु साक्षात्तैलमपीष्यते ।।

तैलाभावे गृहीतव्यं तैलं यत्तिलसम्भवम्

तदभावेऽतसीस्नेहः कौसुम्भः सर्वपोद्भवः ॥

वृक्षस्नेहोऽथ वा ग्राह्यः पूर्वालाभे परः परः ।

तदभावे यवव्रीहिश्यामाकान्यतमोद्भवम् ॥

भरद्वाजोऽन्यथा प्राह घृतप्रतिनिधिं मुनिः ।

गव्याज्याभावतश्छागमहिष्यादेर्घृतङ्क्रमात् ॥

तदभावे गवादीनां क्रमात्क्षीरं विधीयते ।

तदभावे दधि ग्राह्यमलाभे तैलमिष्यते ॥

व्रीहीनां यवानाञ्च मुख्यत्वमाह कात्यायनः "**व्रीहीन्यवात्वा हवीषीति**" । तदभावे एतत्सुसदृशं ग्राह्यम् ।

॥ व्रीह्यादि हविर्द्रव्याणि ॥

अत्र मण्डनोक्ता मुख्या विशेषाः-

हविर्व्रीहिमयङ्कार्य्यं यद्वा यवमयम्भवेत् ।

तयोरभावे श्यामाका नीवारा वा हविर्भवेत् ॥

वेणुयवा गोरसं वा कंदमूलफलं जलम् ।

सत्यं वा हविरेतेषां यथासम्भवमाहरेत् ॥

प्रतिनिध्यन्तरं सत्यं विज्ञेयं हविरत्यये ।

प्रधानदेववोद्देशात्सन्त्यजेत्सत्यमात्मनः ॥

अतोऽन्यदपि वा ग्राह्यंसदृशं धान्यमात्रकम् ।

न ग्राह्यं सर्वथा माषमसूरदरकोद्रवम् ॥

यद्वा व्रीहियवाभावे तुषतण्डुलयोगिनीः ।

ओषधीः प्रतिगृह्णीयादणुकोद्रववर्ज्जिताः ॥

ग्राम्याणां वा भवेद्ग्राम्यमारण्याना मरण्यजम् ।

यवाभावे तु गोधूमास्ततो वेणुयवादयः ॥

छन्दोगग्गृह्यवचनाज्जुहुयाद्धविरत्यये ।

फलं यज्ञियवृक्षस्थ तत्पत्रमथवा जलम् ॥

आग्रायणे न लभ्यन्ते श्यामाकाश्चेत्कथञ्चन ।

श्यामाकप्रस्तरस्तत्र कार्य्यो बौधायनाशयात् ॥ इति ।

॥सम्मार्जनार्थं कुशाः तेषां अग्नौ प्रहरणम्॥

"**स्रुवं प्रतप्य**" (पा.गृ.) इति सूत्रम्। स्रुवप्रतपनम् अधोमुखस्याग्नौ तापनम्। "**संम्मृज्य**" (पा.गृ.) इति सूत्रम् । सम्मार्जनञ्च कात्यायनेनोक्तम् "**वेदाग्रैरन्तरतः प्राक् सम्माष्ट्यनिशित इति विपर्यस्य बहिर्मूलैः प्राङ्कुत्क्रम्य इति**"।

वेदः - ग्रथितकुशमुष्टिविशेषः । तदग्रैः अन्तरतः मुखप्रदेशे उपरि प्रदेशे इति यावत् । प्राक् प्राक्संस्थं संमार्ष्टि सम्यक् प्रकारान्तरेण तत्संलग्नं रजःपातः यथा स्यात्तथा मार्जनङ्करोति। विपर्य्यस्येति । प्राक् इत्यस्य विपर्यासः प्रत्यक् इत्यर्थः। बहिः बाह्यतः मूलैः वेदाग्रमूलैः प्रङ्कुत्क्रम्य प्राग्गगत्वा। अत्र स्मार्त्त वेदाभावेन तदग्रस्याभावात् संमार्गार्थं कुशा एवोपादीयन्ते, वेदस्यापि कुशात्मकत्वेन कुशशि बाधायोगात् ।

तथा च छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः –

तेषां प्राक्शः कुशैः कार्यः सम्प्रमार्गो जुहूषता । इति । तेषां कुशांनामग्नौ प्रक्षेप इति आह

आश्वलायनकारिका -

"**तान्कुशान्कृतसम्मार्गान्प्रोष्याग्नौ प्रहरेदथेति**" ।

युक्तञ्चैतत् श्रौते दर्शनात् । "**अभ्युक्ष्य**" (पा. गृ.) इति सूत्रम् । अभ्युक्षणं सेचनम् । तच्च प्रणीतोदकेन, यावदुदककार्यार्थं प्रणीतानामुपादानात् । "**पुनः प्रतप्य निदध्यात्**" इतिसूत्रम् (पा. गृ.) । पुनरुक्तप्रकारेण

प्रतपनङ्कृत्वा निदध्यात् । निधानञ्च आज्यदेशाद्दक्षिणतः, दर्शपूर्णमासयोस्तथा दृष्टत्वात् । आत्मनो दक्षिणतो निधानमितिपद्धतिकाराः । पठन्ति च - ॥

स्रुक्स्रुवयोर्दक्षिणे निधानम्॥

पुनः प्रतप्य तौ मन्त्री दर्भानग्नौ विनिक्षिपेत् ।

आत्मनो दक्षिणे भागे स्थापयेत्तौ कुशान्तरे॥

तौ स्रुक्स्रुवौ । स्रुवस्यायं संस्कारो होमार्थः । एवञ्च दृष्टार्थता तत्संस्कारस्य । अतः संस्कारविस्मरणे प्रायश्चित्तपूर्वकम्प्रागन्त्यहोमात्कार्यः । ऊर्ध्वन्तु प्रायश्चित्तमात्रम् । **"प्रोक्षण्युदकेनाभ्युक्षणमि" वि गर्गः ।**

"आज्यमुद्वास्य" (पा. गृ.) इति सूत्रम् । उद्वासनमुत्तारणम् । तच्च उत्तरतः।

॥आज्यावेक्षणम् उत्पवनविधिः॥

तथा च कात्यायनसूत्रम्। **"उदगुद्वासयति हविश्चेति" । "उत्तरत उपचारो वै यज्ञ इति" श्रुतेश्च ।** आज्यमिति चरोरप्युपलक्षणार्थम्, तस्यापि होमार्थत्वेनावश्यकत्वात् । तत्र आज्यमुत्थाप्य चरोः पूर्वेण नीत्वाऽग्नेरुत्तरतः स्थापयित्वा चरुमुत्थाप्य आज्यपश्चिमतो नीत्वा आज्यस्योत्तरतः स्थापयेत् इति सम्प्रदायः । अपरे तु "हविष्पात्रस्वाम्यृत्विजां पूर्वं पूर्वमन्तरं ऋत्विजाञ्च यथा पूर्वमिति" परिभाषासूत्रात् । श्रृतानान्तु पूर्वेणोद्वासितानान्तु पृष्ठत इति रीत्यैव स्मार्त्ते उद्वासनमाहुः । उद्वासितमाज्यं चरुञ्चाग्नेः पश्चिमतो निदध्यात्। श्रौते हविरासादनस्य तथा दृष्टत्वात् इति सम्प्रदायः। **"उत्पूय"** (पा.गृ.)इति सूत्रम्। आज्यमित्यनुवर्त्तते । उत्पवनम् उत्क्षेपणमात्रमिति बहवः । उदगग्रे पवित्रे धारयन्नङ्गुष्ठाभ्याम् चोपकनिष्ठिकाभ्याञ्च उभयतः प्रतिगृह्य ऊर्ध्वाग्रे प्रह्वे कृत्वाऽज्ये प्रत्यस्यति। **"सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिरित्याज्यसंस्कारः । सर्वत्र "नासंस्कृतेन जुहुयात्" इति शाङ्खायनगृह्यप्रकारेण** उत्पवनम्, उत्पवनप्रकारविशेषस्याकांक्षितत्वात् । आकांक्षितं परोक्तमपि गृह्यते अविरोधात सवितुस्त्त्वेति मन्त्रस्तु न गृह्यते **"एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः"** (पा. गृ.) इति सूत्रम् इत्यनेन विरोधादि त्यन्ये । **"अवेक्ष्य"** (पा. गृ.) इति सूत्रम् । अवेक्षणम् अवलोकनमाज्यस्य । **"प्रोक्षणीश्च पूर्ववत्"** (पा. गृ.) इति सूत्रम् । चकारादुत्पूय । पूर्ववत श्रौतवत्, तेन पवित्राभ्यामिति लभ्यते । गदाधरमते व्याख्या-पूर्ववदिति पवित्राभ्यां प्रोक्षणीरुत्पूय तास्वेव पवित्रानिधानम । नशब्दादाज्यमपि । पूर्ववदेव पवित्राभ्याम्

॥प्रागग्र समिदाधानम्॥

उत्पवनम् । प्रोक्षणीसंस्कारोऽयं पर्युक्षणार्थः । **"उपयमनकुशानादाय" (पा. गृ.)** इति सूत्रम् । उपयमनकुशाः उपग्रहार्थाः कुशाः तान् दक्षिणहस्तेनादाय सव्ये निधाय । **"समिधोऽभ्याधाय"** इति सूत्रम् ।तिस्रः समिधोभ्यादाय इति सम्प्रदाय: तिष्ठन् समिधः प्रक्षिप्य **"तिष्ठन् समिध आदधात्यस्थीनि वै समिधस्तिष्ठतीव वा अस्थीनीति" श्रुतेः । "तिष्ठन् समिधः सर्वत्र मध्ये"** इति कात्यायनसूत्राच्च । ताश्च प्रागमा आदधाति ।

प्रागग्राः समिधो देया स्ताच काम्येष्वपाटिताः ।

शान्त्यर्थेषु सवल्कार्दा विपरीता जिघांसता॥ **इति ग्रह्यपरिशिष्टात** ।

॥ पर्युक्षणहेतुः ॥

"पर्युक्ष्य" (पा. गृ.) इति सूत्रम् । चुलकगृहीतेनोदकेन अग्निं ईशानादि तदन्तं परिषिच्य। एतच्च प्रोक्षण्युदकेन, उत्पवनरूपप्रोक्षणी संस्कारस्योत्तर कार्यार्थत्वात ।

ऊर्द्धपादावधोवक्त्र: प्राङ्मुखो हव्यवाहनः ।

ईदृशेवह्निरूपे तु आहुतिः कस्य दीयते ॥

सपवित्राम्बुहस्तेन वह्नेः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।

हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा बिभीतः सन्मुखो भवेत् ॥

"जुहुयात्" (पा. गृ.) इति सूत्रम् । वक्ष्यमाणहोमङ्कुर्यात् । संस्त्रवधारणार्थम् पात्रं प्रणीताग्न्योर्मध्ये निदध्यात्। **"एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः"** (पा. गृ.) इति सूत्रम् । एषः परिसमूहनादिपयुक्षणपर्यन्तो विधिरेव न मन्त्राः, एवकारो मन्त्रप्रतिषेधार्थः । क्व? यत्र क्व चन लौकिके स्मार्त्ते वाग्नौ होमस्तत्र वेदितव्यः । अत्र देवीपुराणे प्रत्येकं परिसमूहनादिषु

॥ समन्त्रककुशकण्डिकाकरणम्॥

मन्त्रा उक्ताः । "यद्देवा देवहेळनमिति परिसमूहनम् । मानस्तोक इत्यनुलेपनम् । स्वां वृ- त्रेष्विन्द्र सप्तत्तिमित्युल्लेखनम् । व्रजं गच्छेत्युद्धरणम् । देवस्य त्वेत्यभ्युक्षणम् । अग्निर्मूर्द्धेत्यग्न्युपसमाधानम् । समिधाग्निं दुवस्यतेति समिदधानम् । मयि गृह्णामीत्यग्नेः सन्धुक्षणम् । हिरण्यगर्भेति ब्रह्मासनम् । आपोहिष्ठेति प्रणीताः । कया नश्चित्र इति प्रणीतापूरणम् । पवित्रेस्थो वैष्णव्याविति पवित्रकरणम् । इषेत्वेत्याज्यनिर्वपनम् । त्रातारमिन्द्रमिति स्त्रुवप्रतपनम् । अनिशितोऽसि सपत्नक्षिदिति संमार्जनम्।

धूरसीत्यभ्युक्षणम् । प्रत्युष्टं रक्ष इति पुनः प्रतपनम् । सवितुर्वः प्रसव इत्युत्पवनम् । धूरसीति पर्य्युक्षणम्" । इति ।

एवं लक्षणसंयुक्तं सर्वहोमेंषु याज्ञिकम् ।

विधानं विहितं तत्र ब्रह्मणाऽमिततेजसा ॥

अन्यथा ये प्रकुर्वन्ति सूत्रमाश्रित्य केवलम् ।।

निराशास्तस्य गच्छन्ति सर्वे देवा न संशयः ॥

सूत्रे मन्त्रवर्जितकुशकण्डिकाकरणमुक्तम्, देवीपुराणे तु समन्त्रकम् कुशकण्डिकाकरणम् इत्येवं सन्देहे प्राप्ते निर्णयमाह संहिताप्रदीपः

एकार्थरूढानि वचांसि यानि मिथोविरुद्धार्थपदानि सन्ति ।

न तानि मिथ्या मुनिभाषितानि विद्वान्विदध्याद्विषयव्यवस्थाम् ॥ इदं तु देवीपुराणोक्तशान्तिकस्थालीपाकपरम् । तदन्ते एव तत्र पाठात् । सामान्यतः स्मार्त्तकर्ममात्रपरत्वे च "एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः"(पा.गृ.) इत्यादिसूत्रविशेषःस्यात् ।

कर्काचार्येण एवं निर्णीतम्-यत्र कचिद्धोमः शान्तिकपौष्टिकादिष्वपीति कचिच्छदःगृह्याग्निव्यतिरेकेणापि यथाऽयं विधिः ।

अथात्र वक्ष्यमाणविवाहहोमप्रसङ्गेन सर्वकर्मसाधारणी परिभाषामाह

"अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं स्विष्टकृच्चैतन्नित्यं "सर्वत्र" इति सूत्रम् । अस्यार्थः ।

अन्वारब्धः ब्रह्मणा कृताऽन्वारम्भः । यद्यपि **"दानवाचनान्वारम्भवरवरणव्रतप्रमाणेषु यजमानं प्रतीयादिति' कात्यायनपरिभाषातः** यजमान कर्तृकोऽन्वारंभः सर्वत्र, तथाप्यत्र होमें यजमान एव कर्तेति स्वस्मिन् स्वकर्तृकान्वारम्भासम्भवेन होमकर्तुरन्वारम्भस्य यजमान कर्तृकस्यासम्भवात् अन्यकर्तृक एवान्वारम्भो वाच्यः । अन्यश्च न पत्नी **"अक्लृप्तो वाकश्चित्कर्मणि पुरुषाखाणामि" ति कात्यायनपरिभाषया** क्लृप्तऋत्विजामेंव कर्मकर्तृत्वबोधनात्, प्रकृते च ब्रह्मणः सत्त्वात् तत्कर्तृक एवान्वारम्भ इति **अथैवमुक्तपरिभाषया ब्रह्मण एवं सकलेतिकर्तव्यताकलापकर्तृत्वमस्तु अन्वारम्भे** यजमानस्यैव कर्तृत्वमस्त्विति चेत् न । परिसमूह्येत्यादिभिर्ल्यबन्त्यैः परिसमूहनादीनां सर्वेषां पदार्थानां

समानकर्तृकत्वलामात् । परिसमूहनादौ तु न ब्रह्मणः कर्तृत्वम् तदानीं तस्याविद्यमानत्वात् । न हि ब्रह्मोपवेनात्पूर्वमपि तस्मिन्कर्मणि ब्रह्मास्ति येन तत्कर्तृकं परिसमूहनादि भवेत् इति ।

"ब्रह्मैवैक ऋत्विक पाकयज्ञेषु स्वयं होता भवत्ति" ।। इति गोभिलगृह्यात् ।

ब्रह्मणा दक्षिणे बाहौ। दक्षिणहस्तेन अन्धारब्धे कृते सति आधारसंज्ञके आहुतिं जुहोति। आधारशब्देन होमविशेषो । तत्र पूर्वाधारः प्राजापत्यः अग्नेरुत्तरभागे । उत्तराघार ऐन्द्रः अग्नेर्दक्षिणभागे । पूर्वाघारोऽग्नेरुत्तरप्रदेशे उत्तरघारश्च दक्षिणप्रदेश इति । **"स यदुभयत आघारयतीति" शतपथब्राह्मणम् । "दक्षिणहस्तेनान्तरेण जानुनी आसीन आघारौ जुहोति प्राजापत्यमुत्तरार्द्धे प्राञ्चं मनमा ऐन्द्रं दक्षिणार्द्धेप्राञ्चमेंवेति' मैत्रायणीगृह्यात् ।** आज्यभागौ अग्निदैवत्यसोमदैवत्यो होमविशेषौ । तत्राग्नेयमुत्तरपूर्वार्द्धे सौम्यं दक्षिणपूर्वार्द्धे अतिप्रज्वलितप्रदेशे वा तदुभयं जुहोति । **"आग्नेयमुत्तरपूर्वार्द्धे दक्षिणपूर्वार्द्धे सौम्य समिद्धतम वेति" कात्यायनोक्तेः ।** अत्र च सर्वत्रान्ते स्वाहाकारः कार्यः । **सीतायज्ञप्रकरणे "मन्त्रवत्प्रदानमेंकेषा स्वाहाकारप्रदाना इति श्रुतेर्विनिवृत्तिरिति"** सूत्रेण पारस्करेणैव सर्वत्र स्वाहाकारेणैव होमस्योक्तत्वात् । **"स्वाहाकारः सर्वत्रेति स्वाहाकारप्रदाना" इति च कात्यायनसूत्रात् ।** स्वाहाकारपरिप्राप्तौ तदेकवाक्यत्वाय चतुर्थ्यन्तं देवतापदं उच्चार्य स्वाहान्तेन होमः कार्य इति । तथा च शाङ्खायनं ग्राह्यम् **"अनाम्नात्तमन्त्रास्वादिष्टदेवतासु अमुष्मै स्वाहेति जुहुयादिति" हिरण्यकेशीगृह्यात् । "सर्वदर्विहोमानामेंषकल्पो मन्त्रान्ते स्वाहाकारो ऽमन्त्रास्वामुष्मै स्वाहेति यथादैवतमिति** । एते सर्वेपि होमाः समिद्धे कार्याः । तथा च च्छन्दोगपरिशिष्ट कात्यायनः-

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चापि जायते ॥
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।
आरोग्यमिच्छन्नायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं तथा ॥

॥ अग्निधमनविचार:मुखधमने निषधः ॥

अग्निधमनेऽपि विशेष उक्तस्तत्रैव -

जुहूषंश्च हुते चैव पाणिशूर्पास्यदर्विभिः ।
न कुर्यादग्निधमनं कुर्य्याद्वा व्यजनादिना ॥
मुखेनैक धमन्भ्यग्निं मुखाध्येशोऽध्यजायत ॥ इति

मुखेन धमङ्कलौ न भवति इत्याहतुर्माधव पृथ्वीचन्दोदयौ -

ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखाग्निधमनन्तथा ॥

इति न भवति इत्यनुवर्त्तते । यत्तु वंशादि व्यवधाय घमनमाचरन्ति तन्मुखवित्रुट्नपतनशङ्कया । गौतमस्तु सामान्येनैव मुखं निषेधयति "**अग्निमुखोपधमनविगृह्यवादादि वर्जयत्**" **इति** । एवं "**प्रजापतये स्वाहा**" इति मन्त्रेण पूर्वाधारो भवति इति तु पद्धतयः । **त्यागश्च इदं प्रजापतये नमम इत्येवम्** । स च पत्नीयजमानाभ्याम् उभाभ्यामपि कार्यः उभयोः स्वामित्वाविशेषात् । "**प्रधानं स्वामी फलयोगादिति**" **कात्यायनसूत्रम्** । कात्यायनेन सामान्यतः स्वामिन एव त्यागकरणस्योक्तत्वात् ।

॥ दम्पत्योस्त्यागविचारः ॥

मण्डनेन तु विशेषः

तुल्य एवाधिकारः स्याद्दम्पत्योरुभयोरपि ।

कर्तृत्वञ्च तयोस्तुल्यं द्रव्यत्यागे प्रचक्षते ॥

यद्वा त्यागं पतिः कुर्यात्पत्नी तदनुमन्यते ।

अधिकारे च वैषम्यं प्रोक्तं शब्दानुसारिणा ॥

प्राधान्येन स्वनिष्ठः सन् यजमानोऽधिकारवान् ।

पत्नी तत्परतन्त्रा सत्यङ्गभुताधिकारिणी ॥

तथा -

सन्निधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः ।

असन्निधौ तु पत्नी स्यादुद्देशत्यागकारिका ।

असन्निधौ तु पत्नी स्यादध्वर्युस्तदनुज्ञया ।

उन्मादे प्रसवे चर्त्तौ कुर्वीतानुज्ञया विना ॥

तथा -

उभावप्यसमर्थौ चेनियुक्तः कश्चन त्यजेत् । इति ।

महाव्याहृतयोऽध्येतृप्रसिद्धाः भूर्भुवः स्वस्तिस्त्रः । **सर्वानुक्रमें ऽपि "भूर्भुवः स्वस्तिस्त्रः महाव्याहृतयोऽग्निवायुसूर्यदेवत्याः क्रमेंणेति"** । सर्वप्रायश्चित्तम् इति त्वन्नो अग्न

इत्यादिमन्त्रकरणकपञ्चहोमानां संज्ञा । **"सर्वप्रायश्चित्तं पञ्चभिः प्रत्यृचं त्वन्नो अग्न इति द्वाभ्याम् अयाश्चाग्ने ये ते शतमुदुत्तममति" च कात्यायनसूत्रम्** । प्राजापत्यं प्रजापतिदेवत्यकर्म होम इति यावत् ।

॥स्विष्टकृद्धवनम्॥

स्विष्टकृत् च । स्विष्टकृत् शब्देन स्विष्टकृत् दैवत्यो होम इत्युच्यते । स च 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' । अत्रावदाने हविष उत्तरार्द्धादवदाय अग्नेरुत्तरार्द्धे होतव्यम् । स्विष्टकृतं प्रकृत्यैव **"सर्व्वा उत्तरार्द्धादवद्यत्युत्तरार्द्धं जुहोति" इति श्रुतेः शतपथं** । पूर्वं हुताभिराहुतिभिः संसर्गो यथा न भवति तथा च होतव्यम् । **"असंसृष्टामाहुतिभिरिति" कात्यायनसूत्रम् । "अग्नये स्विष्टकृतेस्वाहेत्यसंसक्तामुत्तरार्द्धपूवार्द्धे जुहोति" इति मैत्रायणीयगृह्यात्** । अत्र कदा- चिन्महाव्याहृतिभ्यः प्राक् स्विष्टकृद्धोमो भवति कदाचित्पश्चात् । स च कर्मविशेषस्थानान्तरे भवति **"प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः" इतिवक्ष्यमाणसूत्रम्** । महाव्याहृतिभ्यः प्राक् स्विष्टकृद्धोमो भवति चेद्यदि आज्यात्सकाशादन्यदपि चरुप्रभृति हविर्भवति । केवलाज्ययागे सर्वाहुतिशेषे भवति ।

॥स्वाहान्तेहवनविचारः॥

कर्मकौमुद्याम् –

स्वाहान्ते जुहुयाद्धोता स्वाहया सह वा हविः ।
त्यागान्ते ब्रुवते केचिद्द्रव्यप्रक्षेपणं बुधाः ।।
हीयते यजमानश्चेत्स्रुवमूलस्य दर्शनात् ।
तस्मात्सङ्गोपयेन्मूलं होमकाले स्रुवस्य च ।।
पाण्याहुतिद्वादश पर्व पूरिका कंसादिना चेत्युवपूरमात्रकम् ।
दैवेन तीर्थं न च हूयते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि तच पावके ॥
उत्तानेन तु हस्तेन त्वङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् ।
संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धवि॥
इति विधानपारिजातात् ।

"एतन्नित्यं सर्वत्र" (पा.गृ.) इति सूत्रम् । एतच्चतुर्दशाहुतिकं कर्म नित्यं सर्वकर्मसु च भवति । ततः संस्रवप्राशनम् । अत्र सर्वहोमार्थं सुवेण गृहीतस्यासर्वहोमः हुत्वा च पात्रान्तरे तस्य शेषस्य स्थापनम् ।

सर्वहोमान्ते च सर्वशेषाणां प्राशनम् । तथा च **"पाकयज्ञेष्ववत्तस्यासर्वहोमो हुत्वा शेषप्राशनम्" कात्यायनः इति ।**

अस्यार्थः पाकयज्ञशब्देन स्मार्त्तहोमा उच्यन्ते । अत्र होमार्थं यदवत्तं गृहीतं तस्य असर्वहोमः कचव्यः । स्रुवादिभिर्यद्गृहीतं तद्धुत्वा। किंचित्परिशिष्य पात्रान्तरे स्थापनमित्यर्थः । सर्वहोमाद्धुत्वा पात्रान्तरस्थापितसर्वशेषाणांप्राशनमाह।

॥ बहि:पतित हविषां जले प्रक्षेपणम् ॥

रेणुः-

स्रुवहोमें सदा त्यागः प्रोक्षणीपात्रमध्यतः ।

पाणिहोम सदा त्यागो विना प्रोक्षणिकं द्विज ॥

शोषः-

ऋत्विजां जुह्वतां वह्नौ बहिः पतति यद्धविः ।

स ज्ञेयो वारुणो भागः प्रक्षेप्यो विमले जले ॥ इति रङ्गनायकृतरुद्रपद्धतौ ।

॥ अथ दक्षिणाविचार: ॥

अथ दक्षिणा । तत्र कात्यायनः पाकयज्ञष्वनुवर्त्तमानेषु **'पूर्णपात्रं दक्षिणा वरो वा" इति । मैत्रायणीगृह्ये च "पूर्णपात्रं दक्षिणा बर्हिरनुप्रहरत्येतेन स्थालीपाकेन स्थालीपाकाः सर्वे व्याख्याता" इति ।**

॥ पूर्णपात्रलक्षणम् ॥

पूर्णपात्रञ्च परिभाषितं यज्ञपार्श्वे-

अष्टमुष्टिर्भवेत्किञ्चित्किञ्चिदष्टौ च पुष्कलम् ।

पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं तदुच्यते ॥

एतदशक्तौ तु-

यावता बहुभोक्तस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते ।

नावरार्ध्यमतःकुर्य्योत्पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥

इति च्छन्दोगपरिशिष्टीयकात्यायनवचनात् । ततो न्यूनमपि भवति ।

"औषधस्य मानपात्रं पूर्ण पूर्णपात्रमिति" तु कर्कः ।

तथा गोभिलगृह्यम् -

"पूर्णपात्रो दक्षिणान्नं ब्रह्मणे दद्यात् कंसं वा चमसं वाऽन्नस्य पूरयित्वा कृतस्य वापि वा फलानामेवैतत् पूर्णपात्रमित्याचक्ष त इति" ।

अत्र च शक्तितो व्यवस्था -

"स्वाधीनं द्रव्यं वरशब्देनोच्यते" इति कर्कः । "गौर्ब्राह्मणस्य वरो ग्रामो राजन्यस्याश्वो वैश्यस्येति"। पारस्करपरिभाषित एवं वरः सर्वत्र ग्राह्यः ।

॥ इति श्रीप्रथमशास्त्रीयरामकृष्णाविराचले पारस्करगृह्यसूत्रविवरणे संस्कारगणपती प्रथमकण्डिका ॥ १ ॥

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in